वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

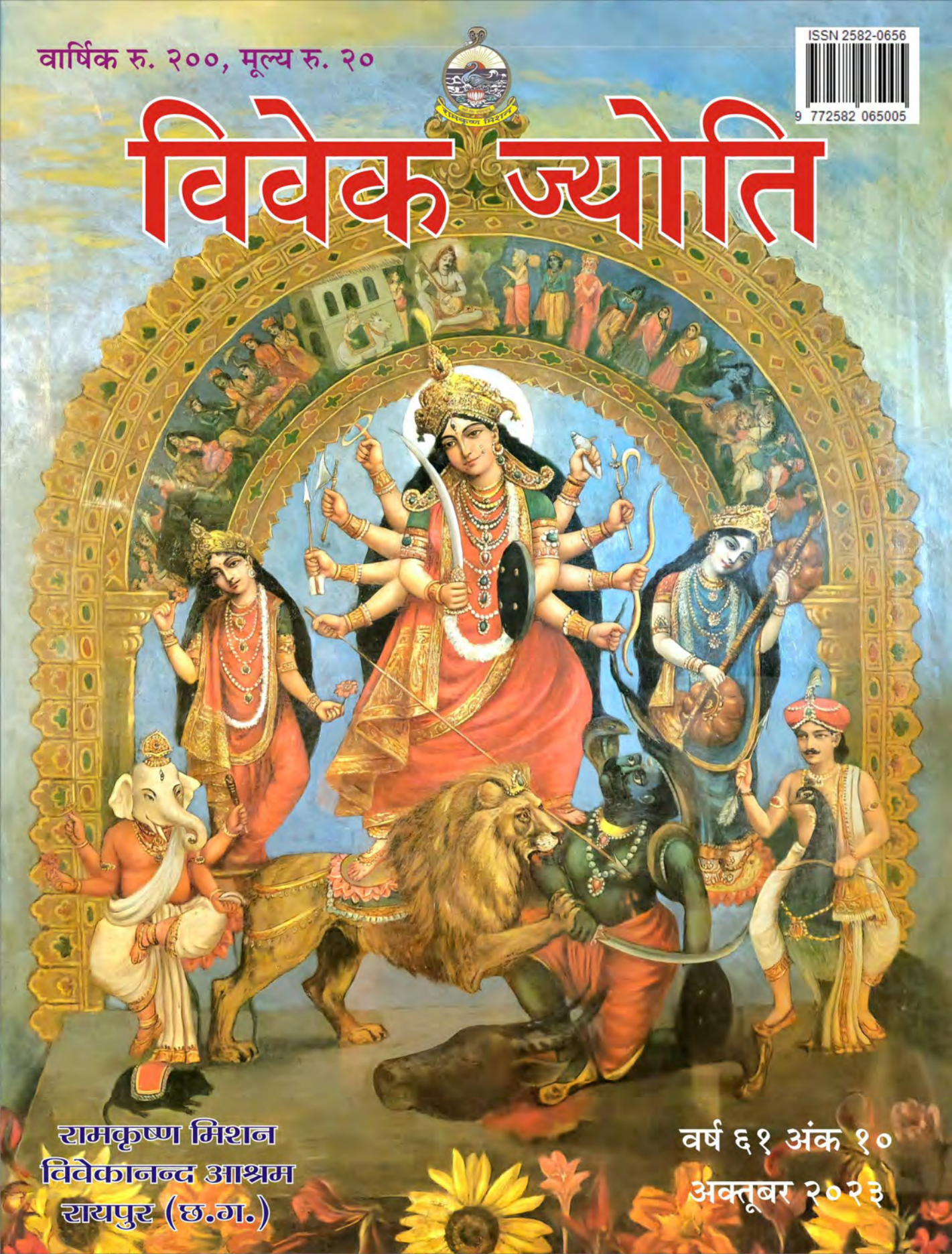

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६१ अंक १०
अक्तूबर २०२३

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६१

अंक १०

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

आश्विन, सम्वत् २०८०

अक्तूबर, २०२३

अनुक्रमणिका

* हमारी नारियाँ अधिक पवित्र हैं : विवेकानन्द ५१०
* दुर्गा नाम क्यों? (स्वामी अलोकानन्द) ५१३
* शरीर अनित्य और आत्मा नित्य है (स्वामी सत्यरूपानन्द) ५१६
* (बच्चों का आंगन) महान पुरुष बनने का दृढ़ संकल्प (श्रीमती मिताली सिंह) ५१७
* विवेकानन्द की कुमारी पूजा और अलमोड़ा के यशोदा माई द्वारा पूजित चित्र (स्वामी ध्रुवेशानन्द) ५२०
* (युवा प्रांगण) उन्नत व्यक्तित्व और समाकलित जीवन का महत्त्व (स्वामी गुणदानन्द) ५२६
* शास्त्रानुसार दुर्गामहास्नान की नदियाँ (उत्कर्ष चौबे) ५२८
* रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि (स्वामी पररूपानन्द) ५४०
* (कविता) वे माने जाने सन्त (बाबूलाल परमार) ५३४
* (कविता) दुर्गा माँ का ध्यान करूँगा (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ५३९

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५०९
पुरखों की थाती ५०९
सम्पादकीय ५११
सारगाछी की स्मृतियाँ ५१८
प्रश्नोपनिषद् ५२५
श्रीरामकृष्ण-गीता ५३४
रामराज्य का स्वरूप ५३५
गीतातत्त्व-चिन्तन ५३८
साधुओं के पावन प्रसंग ५४६
समाचार और सूचनाएँ ५४९

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	

भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ का चित्र रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा का है। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण पृष्ठ संख्या ५२० पर पढ़ें।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान-दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	8,401/-

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

अक्तूबर माह के जयन्ती और त्यौहार

०८	स्वामी अभेदानन्द
१४	स्वामी अखण्डानन्द, महालया
२२	दुर्गा महाष्टमी
१०,२५	एकादशी

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । — स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **— व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष — 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

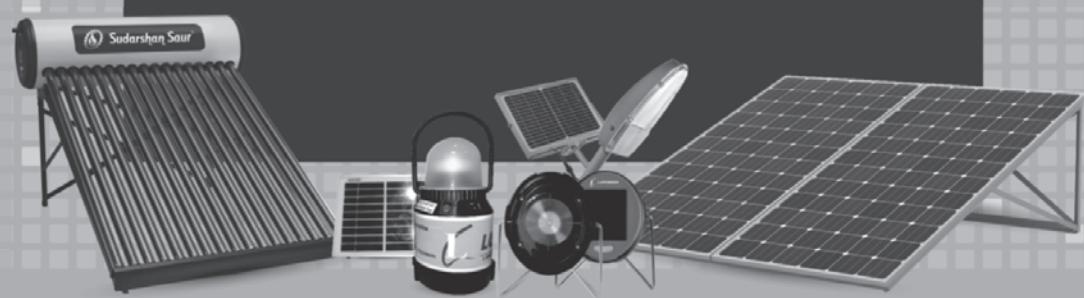

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६१ अक्तूबर २०२३ अंक १०

दुर्गाष्टकम्

जातवेदसे सुनवाम सोम मरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः।।

– हम यागकाल में जागप्रज्ञ अग्निदेव के आराधनार्थ सोम रस का पान करें। वह सर्वज्ञाननिधान देव हमसे शत्रुत्व की इच्छा रखनेवालों का दहन अर्थात् विनाश करे। जिस प्रकार नाविक नौका को समुद्र से पार करता है, उसी प्रकार अग्निदेव अथवा दुर्गारूपी अग्निविशेष भी हमें समस्त दुर्गमताओं से पार कर हमारा रक्षण करे।

– अग्निसदृश वर्णवाली (ज्योतिस्वरूप), स्वकीय तप के प्रभाव से देदिप्यमान, परमपुरुष परमात्मा की स्वयंभूता पराप्रकृति (के रूप में अनेकविध अभिव्यक्त होकर) कर्मों तथा उसके फल सामर्थ्य की (या कार्यसिद्धि के लिये भक्तों द्वारा प्रार्थित) शक्तिरूप दुर्गा देवी की मैं शरण लेता हूँ। हे तारणकुशले देवि ! आप ही हमें संसार गर्त से उत्तम प्रकार से पार करनेवाली हो, अतः आपको नमस्कार !

पुरखों की थाती

न दैवमपि संचिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मनः।
अनुद्योगेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति ।।८०८।।

– व्यक्ति को, सब कुछ भाग्य के भरोसे छोड़कर अपना प्रयास नहीं छोड़ देना चाहिए, क्योंकि समुचित प्रयास के बिना भला कौन तिलों में से तेल पा सकता है?

देवो न विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्।।८०९।।

– परमात्मा, न तो लकड़ी की, न पत्थर की और न मिट्टी की मूर्ति में ही विद्यमान होते हैं। वे तो भक्तों की भावना में ही विराजमान हैं, अतः भावना के साथ पूजा-उपासना ही मुख्य बात है।

न प्रहृष्यति सन्माने नापमाने च कुप्यति।
न क्रुद्धः परुषं ब्रूयात् स वै साधूत्तमः स्मृतः।।८१०।।
(मनु.)

– जो लोग सम्मान पाकर अति हर्षित नहीं होते, न अपमान होने पर क्रोध करते हैं और नाराज होने पर भी कटु वचन नहीं बोलते, उन्हीं को सज्जनों में श्रेष्ठ कहा जाता है।

हमारी नारियाँ अधिक पवित्र हैं : विवेकानन्द

मैं बहुत चाहता हूँ कि हमारी नारियों में तुम्हारी बौद्धिकता होती, परन्तु यदि वह चारित्रिक पवित्रता का मूल्य देकर ही आ सकती हो, तो मैं उसे नहीं चाहूँगा। तुमको जो कुछ आता है, उसके लिए मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ, लेकिन जो बुरा है, उसे गुलाबों से ढककर उसे अच्छा कहने का जो यत्न तुम करती हो, उससे मैं घृणा करता हूँ। बौद्धिकता ही परम श्रेय नहीं है। नैतिकता और आध्यात्मिकता के लिए हम प्रयत्न करते हैं। हमारी नारियाँ इतनी विदुषी नहीं, परन्तु वे अधिक पवित्र हैं। प्रत्येक स्त्री के लिए अपने पति को छोड़ अन्य कोई भी पुरुष पुत्र जैसा होना चाहिए।

यदि तुम किसी को सिंह नहीं होने दोगे, तो वह लोमड़ी हो जायेगा। स्त्री एक शक्ति है, किन्तु अब इस शक्ति का प्रयोग केवल बुरे विषयों में ही हो रहा है। इसका कारण यह है कि पुरुष नारियों के ऊपर अत्याचार कर रहे हैं। आज नारियाँ लोमड़ी के समान हैं, किन्तु जब उनके ऊपर और अधिक अत्याचार नहीं होगा, तब वे सिंहिनी होकर खड़ी होंगी।

जिस जाति ने सीता को उत्पन्न किया है, चाहे उसने उसकी कल्पना ही की हो, नारी के प्रति उसका आदर पृथ्वी पर अद्वितीय है। पश्चिमी नारी के कन्धों पर कानूनी दृढ़ता से बँधे हुए बहुत-से बोझ हैं, जिनका हमारी नारियों को पता भी नहीं है। निश्चय ही हमारे अपने दोष हैं और अपने अपवाद हैं, पर इसी प्रकार उनके भी हैं। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि संसार भर में सबका प्रयत्न यह है कि प्रेम, दया और ईमानदारी को अभिव्यक्ति दी जाये और यह भी कि इस अभिव्यक्ति के लिए निकटतम माध्यम राष्ट्रीय रीति-रिवाज हैं। जहाँ तक घरेलू गुणों का सम्बन्ध है, मुझे यह कहने में तनिक भी झिझक नहीं है कि हमारे भारतीय रीति-रिवाज बहुत-सी बातों में सभी दूसरों से अच्छे हैं।

इसलिये रामकृष्ण-अवतार में 'नारी-गुरु' को ग्रहण किया गया है, इसीलिए उन्होंने नारी के रूप और भाव में साधना की और इसीलिये ही उन्होंने जगज्जननी के रूप का दर्शन नारियों के मातृ-भाव में करने का उपदेश दिया।

महान आर्यों ने तथा शेष में बुद्ध ने नारी को सदैव पुरुष के बराबर स्थान में रखा है। उनके लिए धर्म में लिंग-भेद का अस्तित्व न था। वेदों और उपनिषदों में नारियों ने सर्वोच्च सत्यों की शिक्षा दी है और उनको वही श्रद्धा प्राप्त हुई है, जैसा कि पुरुषों को।

बुद्ध ने धर्म में पुरुषों के समान ही नारियों का भी अधिकार स्वीकार किया था और उनकी अपनी नारी ही उनकी प्रथम और प्रधान शिष्या थीं। वे बौद्ध भिक्षुणियों की अधिनायिका हुई थीं।

राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य से किस प्रकार प्रश्न पूछे गये थे? उनकी प्रमुख प्रश्न करनेवाली थी, वाचक्नवी वाग्मी कन्या ब्रह्मवादिनी, जैसाकि उन दिनों कहा जाता था। वह कहती है, 'मेरे प्रश्न एक कुशल धनुर्धर के हाथ में दो चमकदार तीरों के समान हैं।' उसके नारी होने की चर्चा भी नहीं की गयी है। और फिर, क्या वनों में स्थित हमारे पुरातन विश्वविद्यालयों में लड़कों और लड़कियों की समानता से अधिक पूर्ण कुछ और हो सकता है। हमारे संस्कृत नाटकों को पढ़िए, शकुन्तला की कहानी पढ़िए और देखिए कि क्या टेनीसन की 'प्रिन्से' हमें कुछ सिखा सकती है?

नारियों की अवस्था को बिना सुधारे जगत के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है। पक्षी के लिये एक पंख से उड़ना सम्भव नहीं है।

सम्पादकीय

देबि पूजि पद कमल तुम्हारे

भारतीय संस्कृति में विशेष रूप से आश्विन मास में शक्ति की आराधना देवी दुर्गा के रूप में करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। माँ दुर्गा शक्ति की आगार हैं। समस्त देवों की समन्वित शक्ति की प्रतीक हैं। शास्त्रों ने इनकी और इनकी की कृपा की महिमा गाकर अपनी श्रद्धांजलि समर्पित की है। विभिन्न कवियों, आचार्यों और साहित्यकारों ने माँ के रूप, स्वरूप, स्वभाव और प्रभाव का वर्णन कर अपनी लेखनी को धन्य किया है। गायकों ने देवी माँ की वन्दना गाकर अपने कण्ठ को पावन किया है। भक्तों और विभिन्न प्रकार के साधकों ने देवी की साधना, उनके पावन नाम का जप और उनके चरणों की पूजा कर उनका साक्षात्कार किया है और अपने जीवन को सार्थक किया है।

सच्चिदानन्दस्वरूपिणी, शक्तिमयी, सिद्धिदायिनी देवी की आराधना और उनके चरण-कमलों की पूजा सुर, नर, मुनि, किन्नर, गन्धर्व सभी करते हैं और मनोवांछित फल प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं। इन श्लोकों में कहा गया है –

सिद्ध-गन्धर्व-यक्षाद्यैरसुरैरमरैरपि।
सेव्यमाना सदा भूयात् सिद्धिदा सिद्धिदायिनी।।
पूजां विधाय कुसुमैः सुरपादपानां
पीठे तवाम्ब कनकाचलगह्वरेषु।
गायन्ति सिद्धवनिताः सह किन्नरीभि-
रास्वादितासवरसारुणनेत्रपद्माः।।

जब देवता दैत्यों के अत्याचार से त्रस्त होकर अपने प्रियजनों को छोड़कर स्वर्ग से पलायन कर गये, अनाथ और निराश्रित हो गये, तब वे माँ जगदम्बा की शरण में गये। उन लोगों ने घोर तपस्या की, देवी की आराधना की। देवी प्रसन्न होकर प्रकट होती हैं और उन्हें अभय देकर असुरों के भय से मुक्ति दिलाती हैं।

असुरों ने भी घोर तपस्या के द्वारा देवी की आराधना की और अपनी अभीप्सित वस्तु अस्त्रादि को प्राप्त किया।

लोक में नर-नारी सभी अपनी अभिलषित वस्तु की प्राप्ति हेतु देवी की आराधना करते हैं, माँ के पादपद्मों की पूजा करते हैं और जीवन में सुख-भोग, भुक्ति-मुक्ति प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं। ऐसी सर्वप्रिया, वरदायिनी, अभय प्रदायिनी, सिद्धिप्रदायिनी, शक्तिप्रदायिनी माँ जगदम्बा हैं। भक्तों के द्वारा देवी के चरणों में सहज भाव से फल-फूल आदि समर्पित करने एवं वन्दना करने से वे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाती हैं और अपने भक्तों, आराधकों को मनोवांछित फल प्रदान कर उन्हें शान्ति और आनन्द प्रदान करती हैं। दुर्गासप्तशती में कवच में उल्लेख मिलता है, जिसमें देवी से रूप, विजय, यश आदि की प्रार्थना की गयी है –

सुरासुरशिरोरत्न-निघृष्टचरणेऽम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़ा ही सुन्दर प्रसंग का वर्णन अपनी अनुपम कृत्ति श्रीरामचरितमानस में किया है। जनकनन्दिनी श्रीसीताजी माँ पार्वतीजी का पूजन करने हेतु गिरिजा मन्दिर में जाती हैं और उनके चरणों की वन्दना कर हाथ जोड़कर सबसे पहले वे उनके रूप और स्वरूप दोनों की वन्दना करती हैं। वे कहती हैं –

जय जय गिरिबरराज किसोरी।
जय महेस मुख चन्द्र चकोरी।।
जय गजबदन षडानन माता।
जगत जननि दामिनि दुति गाता।।

सीताजी माँ के लौकिक रूप का वर्णन करते हुये कहती हैं – हे श्रेष्ठ पर्वतराज हिमाचल की पुत्री पार्वती ! आपकी जय हो, जय हो ! हे शिवजी के मुख-चन्द्र की चकोरी ! आपकी जय हो। हे गजमुख गणेशजी और षडानन कार्तिकजी की माता ! हे जगज्जननी ! हे विद्युत-सी प्रभायुक्त शरीरवाली! आपकी जय हो !

इसके बाद सीताजी माँ गौरी की शक्ति और महिमा का वर्णन करते हुये कहती हैं –

नहिं तव आदि मध्य अवसाना।
अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना।।
भव भव बिभव पराभव कारिनि।
बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि।।

– हे माँ ! आपका न आदि है, न मध्य है और न

अन्त है। आपके असीम प्रभाव को वेद भी नहीं जानते। आप संसार का सर्जन, पालन और संहार करनेवाली हैं। आप विश्व को विशेष रूप से मोहित करनेवाली और स्वतन्त्र विहार करनेवाली हैं।

इसके अतिरिक्त हे माता ! आप पति को इष्टदेव माननेवाली श्रेष्ठ नारियों में प्रथम हैं। आपकी असीम, अपार महिमा को सहस्रों सरस्वती और शेष भी नहीं कह सकते। इसके बाद देवी-पूजा के फल के बारे में सीताजी कहती हैं –

सेवत तोहि सुलभ फल चारी।
बरदायनी पुरारि पिआरी।।
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।।

– हे वर प्रदान करनेवाली ! हे त्रिपुरारि शिव की प्रिया! आपकी सेवा करने से चारों फल प्राप्त हो जाते हैं। हे देवि आपके चरण-कमलों की पूजा कर देवता, मनुष्य और मुनि; सभी सुखी हो जाते हैं।

देव-देवी स्तवप्रिय होते हैं। इनकी पूजा, आराधना और वन्दना करने से ये प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होकर अपने भक्त की मनोकामनाओं की पूर्ति का अभीष्ट वरदान देते हैं।

श्रीदुर्गा-मूर्ति के आगमन, प्रणाम और दर्शन से अद्‌भुत आनन्दानुभूति

जब देवी का अर्चाविग्रह अर्थात् दुर्गा-मूर्ति का पूजा-स्थल में आगमन होता है, तो सबमें बड़ी प्रसन्नता होती है। देवी के आगमन से समस्त जन-मानस में नई स्फूर्ति और नई ऊर्जा का संचार होता है। लौकिक फलप्राप्ति के अभिलाषी भक्तवृन्द बड़े धूमधाम से माँ की पूजा करते हैं। बड़े-बड़े सुसज्जित पाण्डाल में माँ को विराजित करके फल-फूल-मिष्टान्न, वस्त्र-आभूषण आदि माँ को निवेदित करते हैं, विभिन्न प्रकार के देवी-स्तोत्रों का सस्वर गायन करते हैं, विभिन्न मन्त्रों और मुद्राओं द्वारा माँ दुर्गा की पूजा करते हैं और माँ को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं। भक्त का इन विविध उपचारों द्वारा पूजा करने का एक मात्र उद्देश्य होता है देवी को प्रसन्न करना।

बेलूड़ मठ 'जीवन्त दुर्गा' के आगमन से आनन्दमय हुआ मठ-प्रांगण

एक बार बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा के समय श्रीमाँ सारदा के आगमन से सम्पूर्ण मठ-परिवेश आनन्द से परिपूर्ण हो उठा था। १९१२ में बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा होनेवाली थी। स्वामी प्रेमानन्द जी माँ से अनुमति और आशीर्वाद लेने के लिये प्राण-पण से प्रयत्नशील हो गये। प्रेमानन्दजी के विशेष आग्रह से श्रीमाँ पूजा के कुछ दिन मठ के पास ही रहने के लिये सहमत हो गयीं। आनन्दमयी माँ का आगमन होनेवाला है, इसलिये साधु-भक्त सभी आनन्दित हो रहे थे। उनके निवास की व्यवस्था मठ के उत्तर ओर के उद्यान में की गयी थी। सन्ध्या होनेवाली थी, किन्तु श्रीमाँ की गाड़ी अब तक नहीं पहुँची। सभी लोग चिन्तित हो रहे थे। माँ के आगमन में विलम्ब होने से मठ के व्यवस्थापक स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज व्यग्र होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। उन्होंने शीघ्र ही प्रवेश-द्वार पर केले के खम्भे और मंगल-घट स्थापित करने को कहा। ज्योंहि देवी का बोधन समाप्त हुआ, श्रीमाँ की गाड़ी मठ के द्वार पर आ पहुँची। श्रीमाँ के आने से प्रेमानन्द जी इतने प्रसन्न हुये कि उन्होंने भक्तों की सहायता से तुरन्त माँ की गाड़ी का घोड़ा खोल दिया और सब लोग मिलकर माँ की गाड़ी को खींचकर मठ के प्रांगण में ले आये। माँ की गाड़ी खींचते-खींचते प्रेमानन्द जी भावाभिभूत होकर प्रेमानन्द में मतवाले होकर डगमगाने लगे। उनके अंग-प्रत्यंग पर आनन्द की दीप्ति बिखर गयी। गाड़ी से उतरकर माँ ने सब कुछ देखकर आनन्दित होकर कहा – ''सब बिलकुल ठीक सजा हुआ है। हमलोग सज-धजकर मानो दुर्गा देवी बनकर आयी हुई हैं।'' श्रीमाँ के शुभागमन से सभी लोग देवी के चिन्मय आविर्भाव का अनुभव कर धन्य हो गये। पूजा के तीनों दिन भक्तों ने 'जीवन्त दुर्गा' को प्रणाम किया और दर्शन किया।''

१९१६ में भी दुर्गापूजा के समय जब श्रीमाँ का आगमन हुआ, तो शंख, घंटा, ढोल-शहनाई, काँसे के घड़ियाल की मंगल-ध्वनि से माँ का स्वागत हुआ। संतों ने पंच प्रदीप से आरती और चामर से व्यजन किया। सन्त-भक्त सभी बहुत प्रसन्न हुये। इस प्रकार देवी का आगमन और प्रणाम मंगलकारी और आह्लादकारी होता है।

इसीलिये सुर-नर-मुनि सभी देवी की आराधना करते हैं। इनकी आराधना से प्रसन्न होकर देवी इन्हें सुख और आनन्द प्रदान करती हैं। इसलिये पार्वतीजी देवी से प्रार्थना करती हैं – **देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।।** ○○○

दुर्गा पूजा विशेष

दुर्गा नाम क्यों?

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में भगवान कार्तिकेय से महर्षि अगस्त प्रश्न करते हैं –

कथं दुर्गेति वै नाम देव्या जातमुमासुत।
कथं च काश्यां सा सेव्या समाचक्ष्वेति मामिह।।

जिसके उत्तर में भगवान स्कन्ददेव ने काशी में दुर्गा नाम के उद्‌भव और काशी में उनके पूजन के विषय में कहा है। प्राचीनकाल में रुरु नामक दैत्य के पुत्र दुर्गासुर ने तपस्या से पुरुषों के द्वारा (चाहे वह किसी योनि का हो) अजेयता का वर पाकर बलोन्मत्त हो गया। उसने भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक को विजय करके अपना अधिकार-विस्तार किया। देवगण स्वर्ग से विताड़ित हो गये। दुर्गासुर के भय से मर्त्यधाम पर धर्म-कर्म व यज्ञादि बन्द हो गये। ब्राह्मणों ने भी उसी के भय से वेदाध्ययन त्याग दिया। दुराचारी राक्षस माया के द्वारा मेघों का सृजन कर वर्षा कराता था। दुष्ट दैत्य के भय से पृथ्वी बिना बीज रोपित किये हुए भी शस्य प्रसव करती और वृक्ष असमय फलदान करते। सपरिवार देवताओं व ऋषियों को उसने बन्दी बना लिया। इस प्रकार उस दैत्य के भीषण हुंकार के प्रभाव से डरकर सभी लोग पलायन करने लगे।

अन्ततः राज्यच्युत हो देवगण महेश्वर भगवान शिव के शरण में पहुँचे। भगवान विश्वेश्वर ने देवताओं की ऐसी दुर्दशा देखकर उस असुर के विनाशार्थ देवी भवानी को प्रेरित किया, क्योंकि इस दैत्य का विनाश पुरुषों द्वारा असम्भव था। रुद्राणी ने त्रैलोक्यमोहिनी कालरात्रि को दुर्गासुर के आह्वानार्थ भेजा। कालरात्रि ने दुर्गासुर के पास जाकर कहा –

दैत्याधिपते त्यज त्रैलोक्यसम्पदम्।
त्रिलोकीं लभतामिन्द्रस्त्वं तु याहि रसातलम्।।

अर्थात् तुम त्रैलोक्य का राज्य देवराज प्रभृति को समर्पित करके पाताल चले जाओ। यदि तुम्हें कुछ अहंकार हो, तो शिवानी के पास युद्धार्थ पहुँचो। सर्वमंगला महादेवी ने यह संदेश तुम्हें देने के लिए मुझे यहाँ भेजा है।

क्रोध से प्रज्वलित होकर उसने अतुललावण्यशालिनी देवी कालरात्री को बन्दी बनाकर अपने अन्तःपुर ले जाने की आज्ञा अनुचरों को दे दी। कालरात्रि ने कहा कि देखो, तुम तो राजनीतिज्ञ हो। मैं देवी की दूत हूँ। मुझे बन्दी बनाकर तुम्हें क्या लाभ? यदि तुम मेरी स्वामिनी रुद्राणी को जीतकर अन्तःपुर में ले जाओ, तो हमारी जैसी सहस्त्रों रूपवती रमणी दूतियाँ अनायास ही तुम्हारे भोगार्थ सुलभ होंगी, क्योंकि शिवानी परम रूप की खान हैं, अबला, मुग्धा और रक्षकहीन हैं। वे सर्वरूपमयी हैं। एक बार उन्हें देखकर दुर्गासुर स्वयं उनके रूप-वैभव पर मोहित हो जायेगा और उनको जीतकर उनके साथ सहस्त्रों रूपवती दासियाँ उसे स्वतः प्राप्त हो जायेंगी। किन्तु अहंकारी व दुर्वृत्त दुर्गासुर ने कालरात्री को ही परमलावण्यमयी मानकर उसे ही बलपूर्वक पकड़ना चाहा। पहले तो दैत्यानुचरों को देवी ने हुंकार मात्र से भस्म कर दिया। बाद में क्रमशः दुर्धर, दुर्मुख आदि सौ करोड़ दैत्य-सैनिकों को कालरात्रि ने उच्छ्वास मात्र से दूर ही उड़ा दिया। तदनन्तर कालरात्रि वहाँ से विन्ध्याचलवासिनी (नारायणी-टीकाकार के अनुसार चुनार के दुर्गाखोह में रहनेवाली दुर्गा – वह भी विन्ध्यपर्वत ही है) शिवानी के

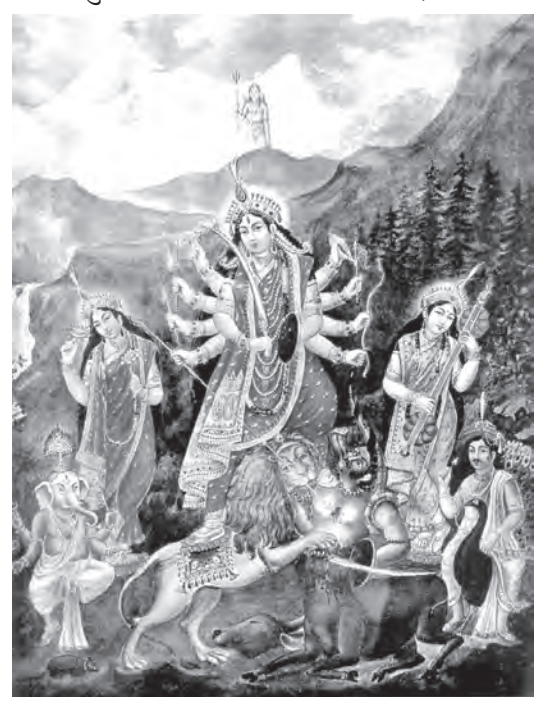

पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। पीछे-पीछे दुर्गासुर भी कोटि-कोटि भीषण महाबली दैत्य-भटों के साथ वहाँ जा पहुँचा।

अब दुर्गासुर ने रणकौतुकप्रिया, परमतेजस्विनी, भीषण आयुधों से सुसज्जित सहस्र भुजाओं से युक्त उन देवी को देखा – **महाभुजसहस्राढ्यां महातेजोऽभिबृंहिताम्।** उन परमसुन्दरी को देखते ही वह दैत्य काममोहित हो गया। उसने कहा –

भवत्स्वेतेषु चान्येषु य एतां विन्ध्यवासिनीम्।
धृत्याऽऽनेष्यति बुद्ध्या वा बलेनापि छलेन वा।।
तस्याऽहमिन्द्रपदवीमद्य दास्याम्यसंशयम्।

अर्थात् तुमलोगों में से अथवा अन्य दैत्यों में से जो कोई बल से, छल से, चतुरता से, चाहे धीरता से इस विन्ध्यवासिनी को पकड़कर लायेगा, उसे मैं इन्द्र का पद प्रदान करूँगा।

तब उसके दुष्ट मन्द बुद्धि अनुचरों ने अपने स्वामी की विभुता की डींग हाँकते हुए सोचा कि इस अबला रमणी को पकड़कर ला देना कठिन थोड़े ही है। इतना कहकर देवी भगवती को ललकारते हुए करोड़ों-करोड़ों सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। देवी ने भी अपने शरीर से –

त्रैलोक्यविजया तारा क्षमा त्रैलोक्यसुन्दरी।
त्रिपुरा त्रिजगन्माता भीमा त्रिपुरभैरवी।।
कामाख्या कमलाक्षी च धृतिस्त्रिपुरतापनी।
जया जयन्ती विजया जलेशी चाऽपराजिता।।
शंखिनी गजवक्त्रा च महिषघ्नी रणप्रिया।

आदि शत-सहस्र शक्तियाँ उत्पन्न कर दीं। रणकुशल वे शक्तियाँ नाना शस्त्रसंयुक्त हो दैत्यसेना का प्रतिरोध करने लगीं। देवी की शक्तियों व दैत्य सेना के उस भीषण युद्ध से चतुर्दिक् कलरव होने लगा। महेशभामिनी देवी दुष्ट दैत्यों पर तीक्ष्ण अस्त्रों की वर्षा कर उन्हें आतंकित करने लगीं।

दैत्य सेना को छिन्न-विच्छिन्न होते देखकर दुर्गासुर ने देवी पर चक्र से प्रहार किया, जिसे पराम्बा ने बीच में ही खण्ड-खण्ड कर दिया। फिर उसने नानाविध बाणों से प्रहार किया, किन्तु भगवती ने सभी को भी खण्डित कर दिया। अनन्तर उस दुर्दम्य दानवराज ने अपने बाण को व्यर्थ जाते हुए देख बड़ा ही क्रुद्ध हो, प्रलयानल के तुल्य प्रभावाले त्रिशूल को लेकर देवी को ही लक्ष्य करके बड़े वेग से उनकी ओर फेंका, पर चण्डिका देवी ने अपने त्रिशूल से गिरते हुए उस त्रिशूल को भी अर्धमार्ग में ही दैत्यों की जयाशा के सहित काट गिराया, वह महाशूल भी देवी के त्रिशूल से व्यर्थ हो गया। किसी कवि ने इस युद्ध का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है –

दुर्गासुर के सैन्य में, घुसीं शक्ति सब जाय।
करन लगीं विध्वंस तब, मत्त असुर कुल पाय।।
लागे उलटन दैत्यगण, पटापट्ट तह धाय।
जनु वहि सेना में महामारी फैली आय।।
है चुनार के पास ही, 'दुर्गाखोह' प्रसिद्ध।
विंध्यासिनी हैं वहाँ, दुर्गा सेवहिं सिद्ध।।

इस प्रकार भगवती विंध्यवासिनी ने जब एक-एक कर दैत्यराज के अस्त्रों को नष्ट कर दिया, तब उन्होंने उसे पादाघात कर भूमिष्ठ कर दिया। तब दानवाधिपति दुर्ग घनघटा के भीतर से बनौरी (हिमकण करका) की वर्षा कर बड़े ही वेग से आगे बढ़ने लगा। तब भगवती विंध्याचल रानी ने शोषणास्त्र के प्रयोग से उस बनौरी की वृष्टि को क्षण भर में दूर हटा दिया। फिर मायाशक्ति से दानव हाथी का रूप लिया, उसका भी सूँड़ देवी ने काट डाला। फिर भयंकर महिष रूप धारण कर वह असुर आया, उसे भी भवानी ने त्रिशूल से वेध डाला। तदनन्तर दानव ने सहस्रायुधधारी सहस्रबाहु बनकर कालान्तक के समान महाभयंकर युद्ध किया। उस समय उस परम दुर्दम्य दुर्गासुर ने सहस्रायुधधारी सहस्रबाहु बनकर कालान्तक के समान महाभयंकर युद्ध किया। इसके अनन्तर वह महाबलशाली दानववीर तत्क्षण समरनिपुणा भगवती को पकड़कर आकाशमंडल में उठा ले गया। उसने जगदम्बा को गगनमंडल में बहुत दूर फेंककर बड़े वेग से क्षणमात्र में बाणों का जाल बिछा दिया। उस समय गगनमंडलस्था भगवती उसके बाणों के मध्य में गहरी बदली के बीच में घिरी हुई विद्युत्प्रभा-सी चमकने लगीं और उन्होंने अपने बाणों से उसके शरजाल को हटाकर एक बड़े तीक्ष्ण बाण से उस दैत्येन्द्र को मार डाला। देवी के उस महाबाण से हृदय विद्ध होने पर वह दैत्य नेत्रों को घूर्णित करता हुआ बड़ा ही विह्वल होकर भूतल पर गिर पड़ा। उसकी रुधिर-धारा से नदी बह चली। इस प्रकार से उस परम पराक्रमशाली दुर्गासुर के मारे जाने पर देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने लगीं, संसार प्रहृष्ट हो गया और सूर्य, चन्द्र और अग्नि ने अपने-अपने तेज को प्राप्त किया। तब महर्षियों सहित देवतागण पुष्प की वृष्टि करते

हुए वहाँ पहुँच कर बड़े आदर के साथ उत्तमोत्तम स्तुतियों से महादेवी की स्तुति करने लगे –

नमो देवि जगद्धात्रि जगत्त्रयमहारणे।
महेश्वरमहाशक्ते दैत्यद्रुमकुठारिके।।
त्रैलोक्यव्यापिनि शिवे शङ्खचक्रगदाधरि।
स्वशार्ङ्गव्यग्रहस्ताग्रे नमो विष्णुस्वरूपिणि।।

... इत्यादि देवीपञ्जरस्तोत्र अथवा शक्तिवज्रपञ्जर स्तोत्र नामक इस स्तोत्र से देवताओं ने स्तुति की, जिसके प्रभाव से सभी प्रकार के दुखों का नाश होता है। तदन्तर देवी जगद्धात्री ने सन्तुष्ट होकर जगत के समक्ष स्वयं ही अपने दुर्गा नाम की घोषणा करते हुए कहा है –

अद्य प्रभृति मे नाम दुर्गेति ख्यातिमेष्यति।
दुर्गदैत्यस्य समरे पातनादितिदुर्गमात्।।

भगवान स्कन्द ने कहा कि इस प्रकार से देवी का दुर्गा नाम पड़ा – **इत्थं दुर्गाभवन्नाम तया देव्या महामुने।** इसके अनन्तर उन्होंने यह बताया है कि काशी में कैसे और कब दुर्गादेवी का दर्शन-पूजनादि करना चाहिए। अष्टमी, चतुर्दशी और प्रत्येक मंगलवार को काशी में दुर्गतिहारिणी दुर्गा देवी का निरन्तर पूजन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त दोनों नवरात्रियों (चैत्र व आश्विन) में व्रत कर प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन पूजन करना चाहिए। दुर्गाकुण्ड में स्नानकर सर्वार्तिहारिणी दुर्गा देवी का सविधि दर्शन-पूजन करने से सर्वविध कल्याण होता है।

देवी स्वयं अपनी शक्तियों व गणों के साथ सदैव चतुर्दिक् से काशी की रक्षा कर रही हैं। उन सब का भी पूजन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। काशीमण्डल के चारों ओर शतनेत्रा, सहस्रास्या, अयुतभुजा, अश्वारूढ़ा, गजास्या, त्वरिता, शववाहिनी, विश्वागौरी और सौभाग्यगौरी, ये नवों क्षेत्ररक्षक देवियाँ पूर्वादि आठों दिशाओं में और (एक) मध्य में अधिष्ठित हैं। इसी रीति से रुरु, चण्ड, असितांग, कपाली, क्रोधन, उन्मत्त, संहार, अर, भीषण नामक आठ भैरव आठों दिशाओं में नियुक्त हैं, वे सभी निर्वाणलक्ष्मी का स्थान काशीक्षेत्र की निरन्तर रक्षा करते रहते हैं। ये शस्त्रास्त्रधारी करोड़ों अनुचरों से वेष्टित हैं और विद्युज्जिह्व आदि चौंसठ वेताल आदि के साथ क्षेत्र की रक्षा करते रहते हैं। ये वेताल भी पूजित और प्रसादीकृत होने पर क्षेत्ररक्षक हैं। एक करोड़ भूत भी इस काशी निर्वाणलक्ष्मी पुरी के रक्षक हैं, पालक हैं।

इस प्रकार स्कन्द पुराण के काशी खण्ड के ७१वें और ७२वें अध्याय में दुर्गासुर नामक दैत्य का विनाश करने से भगवती दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध हुई, ऐसी कथा आती है। वहीं अन्य पुराणों में दुर्गमासुर नामक दैत्य का आख्यान मिलता है। मार्कण्डये पुराणान्तर्गत देवी माहात्म्य में देवी ने कहा है –

तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्।
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।।

महिषासुरमर्दिनी दुर्गा का आविर्भाव स्वयंभूः अर्थात् प्रथम मन्वन्तर में (देवासुरमभूद्युद्धं पूर्वम्बदशतं पुरा) जिनका लीला-स्थान हिमालय है। वहीं दुर्गमासुरघातिनी भगवती दुर्गा का आविर्भाव काल वैवस्वत मन्वन्तर है तथा लीलास्थल विंध्याचल है। देवीभागवत में देवी ने देवताओं से कहा है –

दुर्गमासुरहन्त्रीत्वाद्दुर्गेति मम नाम यः।
गृहणाति च शताक्षीति मायां भित्त्वा व्रजत्यसौ।।

दुर्गमासुर व दुर्गासुर सम्भवतः एक ही है, क्योंकि दोनों का वध विंध्याचल पर्वत पर ही हुआ है। देवीभागवत महापुराण के भाष्यकार नीलकंठ कहते हैं कि शताक्षी जैसे नाम उनके जलदानादि कार्यों के अनुसार ही है, उनके अवतारों के अनुसार नहीं। लेकिन नागोजी भट्ट उनके प्राकट्य होने के समय के बारे में कहते हैं, देवी शताक्षी वैवस्वत मन्वन्तर के ४०वें चतुर्युग में शाकम्भरी के रूप में अवतरित होती हैं। लक्ष्मीतन्त्र में कहा गया है – **तस्मिन्नेवान्तरे चक्रं चत्वारिंशत्तमे युगे।** इन सभी वाक्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शताक्षी, शाकम्भरी और दुर्गा देवी के अवतारों के अनुसार उनके तीन पृथक् नाम हैं।

देव्यथर्वशीर्ष में कहा गया है – **यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।** अर्थात् वह जो 'दुर्गा' नाम से विख्यात है, उनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। वस्तुतः दुर्गा देवी पौराणिक कथाओं में कई रूपों और नामों में प्रकट होती हैं, लेकिन अन्ततः ये सभी देवी के अलग-अलग रूप और अभिव्यक्तियाँ हैं।

सकल देवग्रह शक्ति विशाला।
भैरव भूत प्रेत अरु काला।।
दुर्गा भजे करहिं सब रच्छा।
शक्तिमान जग सबसे अच्छा।। ○○○

शरीर अनित्य और आत्मा नित्य है

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हम सबके जीवन में कभी-कभी ऐसा होता है कि सब कुछ होते हुए भी कुछ अच्छा नहीं लगता है। ऐसा क्यों होता है? किसी से मतभेद हो गया, कोई विपरीत घटना घट गई, तब हमारा मन समता में नहीं रहता। तब प्रिय लगनेवाली चीज भी अच्छी नहीं लगेगी। शरीर और मन से मिलनेवाला सुख सीमित रहता है। मन की अनुकूलता में सुख और प्रतिकूलता में दुख होता है। जैसे दूध में नींबू पड़ने से दूध फट जाता है, वैसे ही हमारे विपरीत स्वभाववालों को देखकर हमारा मन दूषित, कलुषित हो जाता है। इन्द्रियों से जो सूचना हमें मिलती है, उसी के आधार पर हमारा स्वभाव बनता है। अपने मन से ही हमारा स्वभाव देखा जा सकता है। हमारे मन में क्या है, ये हम ही जान सकते हैं। हम जो कर्म अच्छे-बुरे करते हैं, उससे हमें सुख-दुख मिलता है। कर्म के प्रति आसक्ति से दुख और अनासक्ति से सुख मिलता है। ठाकुर का नाम स्मरण करने से, उनसे बातचीत करने से वे जल्दी सुनते हैं। हमारी सभी क्रियायें इच्छा से होती हैं। हमारा मन भी एक गोल बाजार जैसा है। हम जीतना मन को समझाते हैं, उतना मन उथल-पुथल करने लगता है। मन चंचल हो जाता है। मनुष्य अपने मन का गुलाम हो जाता है।

वस्तु, व्यक्ति और स्थान में हमारा मन बहुत अटक जाता है। जब भी मनुष्य संसार में आयेगा, तो उसमें ये सब गुण रहते हैं। जो साधक प्रयत्न करके मन को साध लेते हैं, अपने मन को भी जान लेते हैं, वे हैं योगीपुरुष। मन को मन की आँखों से ही देखा जा सकता है। दुख और सुख हम मन से ही देखते हैं। यदि मन को आध्यात्मिकता में ले जाते हैं, तो वह ईश्वरोन्मुखी हो जाता है। यदि मन की भौतिक वस्तुओं में रुचि हो जाती है, तो वह उसकी प्राप्ति और सुख को चाहता है, पर उससे उसे आनन्द नहीं मिलता है। आनन्द तो ईश्वर के नाम से ही मिलता है। सुख-दुख के अनुभव से हम जब शान्त हो जाते हैं, तब हमें ईश्वर की अनुभूति होने लगती है। हमारी दुर्बलताओं के कारण हम ईश्वर की अनुभूति नहीं कर पाते हैं। इसलिए ईश्वर की उपासना करने से हमारी सभी दुर्बलतायें चली जाती हैं।

जैसे हम किसी वस्तु, व्यक्ति के विषय में जानने का प्रयास करते हैं। वैसे ही हम जान लें कि संसार की मूल प्रकृति क्या है? जैसे लोहा का मूल गुण है उसकी कठोरता। वह कड़ा रहता है। उसी प्रकार हमें ईश्वर के स्वरूप के बारे में भी थोड़ा जानना चाहिये। जब भी हम जप, ध्यान और प्रार्थना करते हैं, तब ईश्वर के बारे में थोड़ा जान लें। मनुष्य के मन की ये स्वाभाविक प्रकृति है कि वह जो वस्तु खोजता है, वह उसके पास ही मिलती है। वह जिसे जानना चाहता है, वह उसके पास ही है। ईश्वर नित्य हैं और संसार अनित्य है। यह भाव जब तक मन में नहीं आता, तब तक हमारा मन चंचल होगा ही। हमलोग मुँह से बोलते हैं, लेकिन संसार को सत्य समझते हैं। संसार अनित्य है और भगवान सत्य है ऐसा भाव, जब तक मन में नहीं आता, तब तक मन चंचल ही होगा।

हमारी आत्मा चैतन्यस्वरूप है, यानि उसमें चेतना बुद्धि है। अनित्य हमारा शरीर है। हमारा नहीं रहेगा, एक दिन मर जायेगा, किन्तु हमारी आत्मा रहेगी। संसार से विरक्ति का नाम वैराग्य है। वैराग्य के बिना वस्तुओं का आकर्षण नहीं मिटेगा। हममें जब आसक्ति रहती हैं, तब हमको लगता है कि कहीं ये संसार हमसे चला नहीं जाये। किन्तु समय सबको पुराना करता है। एक दिन यह संसार हमको छोड़ देगा। इसलिये जल्दी इसका अच्छा उपयोग कर लेना चाहिए, नहीं तो समय निकल जायेगा। प्रतिदिन हमारे मन में यह भाव बना रहे कि हम स्थायी नहीं हैं, तब हमें शान्ति मिलेगी। एकमात्र परमात्मा ही सत्य है, जब इसे अच्छी तरह जान लोगे, तभी साधना में आगे बढ़ सकोगे। ○○○

महान पुरुष बनने का दृढ़ संकल्प

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, आज हम ऐसे व्यक्तित्व के बारे में बात करेंगे, जिन्हें हम लौह-पुरुष के नाम से जानते हैं। जी हाँ, हम बात कर रहे हैं, सरदार वल्लभ भाई पटेल के बारे में। बच्चो, अगर हम आजादी से पहले की बात करें, तो कोई राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री नहीं होते थे। उस समय अस्तित्व केवल राजाओं का हुआ करता था, जो अपने राज्य में स्वयं कानून बनाते और राज्य करते थे।

वल्लभ भाई पटेल का जन्म ३१ अक्तूबर, १८७५ में गुजरात के नाडीयाड में हुआ, उनके पिता का नाम झाबर भाई पटेल और माँ का नाम लाड़बाई था। कहा जाता ह, वल्लभ पढ़ाई में आरम्भ से ही अच्छे थे। उन्होंने अपने गाँव में प्रारम्भिक पढ़ाई की और फिर बोरशद नामक स्थान से २२ साल की उम्र में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

उन्होंने किसी दूसरे से नहीं, स्वयं से महान पुरुष बनने का दृढ़ संकल्प लिया। इसके बाद उन्होंने छोटी-मोटी नौकरियाँ की और थोड़े पैसे इकट्ठे होने पर इंग्लैंड से कानून की पढ़ाई करने का निर्णय लिया। आरम्भ में पढ़ाई के दौरान उनके पास पैसों की कमी होती थी, लेकिन अपने मित्रों से किताबें माँगकर अपनी पढ़ाई करते। बहुत संघर्ष और कड़ी मेहनत से केवल २ साल में अपनी कानून (लॉ) की पढ़ाई पूरी कर जब वे भारत वापस आये, तो उनके माता-पिता ने उनकी शादी झेवर बाई नाम की लड़की से करा दी। फिर वे अपनी पत्नी के साथ गोधरा नामक स्थान पर जाकर बस गये और वहीं कोर्ट में वकालत करना आरम्भ किया।

वल्लभ भाई पटेल समाज में फैली कुरीतियों से बहुत दुखी थे, इसी परेशानी को दूर करने के लिए वे राजनीति में जाना चाहते थे। इसी कड़ी में वे १९१७ में अहमदाबाद Sanitation Commissioner पद के लिए चुनाव लड़े और जीते भी। परन्तु ब्रिटिश और वल्लभ भाई के विचार मेल नहीं खाते थे, इसीलिए उनकी रुचि राजनीति में कम होने लगी। तभी १९१७ में उनकी भेंट महात्मा गाँधी से हुई। वे उनसे बहुत प्रभावित हुए और वे भी भारत की आजादी में सम्मिलित हो गये। उनको अहमदाबाद में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस में गुजरात सभा का सचिव बनाया गया। वे भारतीय अंग्रेजों के द्वारा हो रहे अत्याचार से परेशान थे। एक बार गुजरात में भयंकर सूखा पड़ा। भूखमरी की अवस्था में भी ब्रिटिश सरकार ने कर वसूलने में कोई भी कमी नहीं की। किसानों का दुख वल्लभ भाई से देखा नहीं गया और उनके समर्थन में आगे आये। हमेशा सूट-बूट में रहनेवाले वल्लभ भाई ने अपना सूट-बूट त्याग कर देशी पोशाक अपना लिया, इसी तरह हजारों देशभक्तों की कोशिशें रंग लायी और १९४७ में देश आजाद हो गया।

भारत के सभी लोग चाहते थे, सरदार वल्लभ भाई पटेल देश के पहला प्रधानमंत्री बनें, लेकिन उन्होंने अपने आप को इस पद से दूर रखना सही समझा और पंडित जवाहर लाल नेहरू को अवसर दिया। वे पहले डिप्टी और गृहमन्त्री बने। उनकी पहली प्राथमिकता बिना किसी विवाद के ५६५ रियासतों को एक साथ करना था। यह आसान काम तो बिल्कुल नहीं था, फिर भी अपने दृढ़ संकल्प के साथ यह काम कर दिया और भारत के टुकड़े होने से बचा लिया। अपने मजबूत संकल्प के कारण ही उन्हें **'लौह-पुरुष'** भी कहा जाने लगा। हर काम में आगे रहने के कराण उन्हें **'सरदार'** का नाम तो पहले ही दिया जा चुका था। लोगों के अधिकार के जंग की लड़ाई लड़ते-लड़ते १५ दिसम्बर, १९५० को मुम्बई के बिरला हाऊस में दूसरी बार हृदयाघात होने से उनका निधन हो गया। भारत सरकार ने यह घोषित किया कि उनके जन्म दिवस को **'भारतीय एकता दिवस'** के रूप में मनाया जायेगा। स्टेच्यू ऑफ यूनिटी, जो वल्लभ भाई पटेल की सबसे ऊँची प्रतिमा बनाई गई है, जिसकी ऊँचाई १८२ मीटर है। यह अमेरिका की स्टेच्यू ऑफ लिबर्टी से भी दो गुनी है।

सरदार वल्लभ भाई पटेल के जीवन से सीखने योग्य ५ प्रमुख बातें हैं – (१) भारत के ५६५ रियासतों को अपनी फौलादी इच्छाशक्ति से एक धागे में गूँथना। (२) जीवन में अपने आप से संकल्प करना। (३) अपनों से बड़ों का हमेशा आदर-सम्मान करना। (४) कठिन समय में भी लक्ष्य तक पहुँचना। (५) हमेशा अपना कर्तव्य पालन करना।

तो बच्चो, सरदार वल्लभ भाई पटेल के जीवन की इन ५ बातों को यदि हम आत्मसात् कर लें, तो हम भी अपने जीवन के शिखर तक पहुँच सकते हैं। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (१३१)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१७-०६-१९६५

कामारपुकुर के चित्त महाराज (प्रशान्त चैतन्य) आए हैं। उनके माता-पिता का निधन हो चुका है, दोनों बहनों का विवाह भी हो चुका है।

महाराज – वाह ! तुम्हारा तो अच्छा भाग्य है। अब तो तुम पूरी तरह ठाकुर के हो गए।

चित्त महाराज – ठाकुर कृपा करके रक्षा करें, तो...

महाराज – ठाकुर यही करने के लिए ही तो वैकुण्ठ से अवतरित होकर आए हैं। यही तो उनका काम है। वे तो तुम्हें पकड़कर ले चलेंगे, यह तो उनका ही उत्तरदायित्व है।

१७-०६-१९६५ के बाद डायरी में २२-११-१९६५ की तिथि का वर्णन है। १८-०६-१९६५ का पत्र पढ़कर इसका अनुमान करना सम्भव हो जाता है। इस समय लिखित कुछ पत्रों के माध्यम से इन कुछ महीनों का एक चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। १८-०६-१९६५ के पत्र का अंश इस प्रकार है – ''गत १३ जून को महाराज की दाहिनी आँख में पुन: ग्लूकोमा होने से वे मरणासन्न होकर पड़े रहे। शल्यचिकित्सा का निर्णय लगभग हो चुका था। कई परेशानियों के बाद कल से थोड़ा आराम हुआ है। रात्रि-जागरण हो रहा है। इस प्रसंग में स्मरण आता है कि सारगाछी में रहते समय अस्वस्थ महाराज ने एक दिन अचानक श्रीमाँ के पैर फैलाकर बैठनेवाले चित्र के लिए आग्रह किया। आश्रम में तब वह चित्र कहीं भी नहीं था। आश्रम के अध्यक्ष सुखदानन्द महाराज के पास वैसा एक चित्र था। उन्होंने वही चित्र मुझे देकर कहा ''कहना कि मेरे पास से ले आए हो।'' महाराज इस चित्र को हमेशा तकिया के समीप रखते थे। इसीलिए सारगाछी से वाराणसी आते समय महाराज के पास के अन्य चित्रों के साथ ही इस चित्र को भी लाया गया था। यह चित्र काशी में भी महाराज के सिरहाने के पास रहता। रात में बीच-बीच में वे देखते कि कोई है कि नहीं फिर थोड़ा छिपाकर, टार्च जलाकर श्रीमाँ के दोनों पैरों को एकबार देख लेते और फिर चुपचाप सो जाते। कुछ समय बाद फिर ऐसा ही करते। एक दिन मैं बोला, 'सोएँगे कब?'' तब वे हँसते हुए बोले 'बूढ़ा हो गया हूँ न, इसीलिए नींद नहीं आती। क्या करूँ, बीच-बीच में बूढ़ी माँ के दोनों चरण देख लेता हूँ।''

०२-७-१९६५ के पत्रांश में लिखा है – प्रेमेश महाराज के मित्र मोक्षदा मोहन दास का मृत्यु-समाचार। मोक्षदा बाबू जब बेहोशी की अवस्था में अस्पताल में भर्ती थे, तब एक दिन महाराज को पेराम्बुलेटर पर ले जाकर अस्पताल-कक्ष में पहुँचाया गया। अनेक नली से बंधे शरीर को देखकर महाराज बहुत ही बेचैन और परेशान हो उठे। जल्दी से उन्हें वहाँ से वापस लाया गया। तब वे एक दोहा बोल पड़े –

राम मरे, श्याम मरे, मरे यदु राय।
शय्या पर बूढ़ा प्रेमेश, करे हाय, हाय।

महाराज द्वारा विष्णु चैतन्य को लिखित दिनांक ०२-०७-१९६५ के एक पत्र का अंश इस प्रकार है – ''भाई मोक्षदा मोहन की ब्रह्मनिर्वाण-प्राप्ति की सूचना बड़ी ही चित्ताकर्षक है। वे पेट के रोग से थोड़ा पीड़ित होकर अस्पताल में केवल तीन दिन अचेतावस्था में रहे। इसके बाद ५-६ दिन इसी दशा में रहकर २५ जून को सायं ५ बजे उन्होंने ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त किया। मणिकर्णिका घाट पर दाह-संस्कार करके लोग २ बजे रात में वापस आए। हाय रे, विष्णु चैतन्य ! और बिस्तर पर पड़कर दीर्घकाल से मैं कैसा भयंकर कष्ट पा रहा हूँ ! तुम्हारा पत्र पढ़ने के लिये हमलोग बड़ा आग्रह रखते हैं। शीघ्र ही पंजीकृत डाक से पत्र भेजना। स्वामी ब्रह्मानन्द नामक पुस्तक का पाठ सुना। अरे! इस पुस्तक ने तो बड़ा ही आनन्द दिया है। अपूर्वानन्द

स्वामी द्वारा लिखित 'स्वामी शिवानन्द' पुस्तक पढ़ रहा हूँ। वह भी बड़ी अद्‌भुत !

तुम्हारे छात्रों की सफलता के समाचार से आनन्दित हुआ। तुम शिक्षक के रूप में श्रीश्री ठाकुर की सेवा करके धन्य हो जाओ। तुम लोग रात्रि-भोजन के बाद सभी लोग मिलकर ठाकुर की जीवनी का पाठ करते-सुनते हो, इस समाचार से मैं बहुत ही आनन्दित हुआ हूँ। तुम अपने सभी सहपाठियों से मेरा धन्यवाद कहना। यहाँ मेरे सभी साथी बहुत आनन्द से हैं। अपने लोगों का कुशल समाचार देना। मेरी स्नेहिल शुभेच्छा जानना।''

०७-०९-१८६५ को सेवक द्वारा लिखित पत्र का अंश है – बादल दा, ध्रुव दा एक-दो दिन में जाएँगे। राममूर्ति दा १२-१३ को जाएँगे। नरेन्द्रपुर के कुबेर महाराज, चित्त दा, विष्णु दा, वरुण दा आए थे और आज जाएँगे।

एक ब्रह्मचारी द्वारा प्रेषित एक लेख का पाठ सुनकर महाराज ने खुश होकर एक पत्र लिखा। ब्रह्मचारियों हेतु लिखने पर भी इस पत्र में मानो वर्तमान पीढ़ी को उद्देश्य बनाकर उन्होंने लिखा –

श्रीरामकृष्ण:

वाराणसी

१२-०७-१९६५

प्रिय ....

तुम्हारा यह लेख पढ़कर इतना आनन्दित हुआ कि सब बातें लिखना अब मेरे लिए सम्भव नहीं है। मेरा शरीर ऐसे ही अस्वस्थ है।

तुमने रामकृष्ण-साहित्य इतनी अच्छी तरह पढ़ा है कि वह मेरे लिए बड़े ही आश्चर्य की बात लग रही है। हमारे संघ में अत्यल्प युवक साधु इन सब पुस्तकें को इतनी अच्छी तरह से पढ़ते हैं। यह विषय जैसे सुस्पष्ट हुआ है, वैसे ही भाषा की अभिव्यक्ति भी सुन्दर हुई है। यदि तुम हमेशा इस तरह लेख लिखने का अभ्यास करो, तो संघ का बहुत ही उपकार होगा।

सम्प्रति स्वामी गम्भीरानन्द की 'श्रीमाँ सारदादेवी' पुस्तक का पाठ सुन रहा हूँ। उन्होंने रामकृष्ण-साहित्य को बहुत अच्छी तरह पढ़ा है और इस पुस्तक में साहित्य का सौन्दर्य भी पर्याप्त अभिव्यक्त हुआ है।

हमारे संघ में इस तरह के लेखकों का बड़ा ही अभाव है। इसीलिए तुमसे मैं लिखने-पढ़ने-सुनने का अभ्यास करने का अनुरोध कर रहा हूँ।

खुजली रोग के बढ़ जाने से मुझे बहुत ही कष्ट हो रहा है। अपना कुशल-समाचार देना। मेरी स्नेहिल शुभेच्छा स्वीकार करना।

इति - शुभाकांक्षी

प्रेमेशानन्द

पुनश्च – मंत्र के सम्बन्ध में पूज्यपाद महाराज ने कहा है कि मंत्र को मुख से उच्चारित होकर नहीं सुनने पर मंत्र की शक्ति नहीं आती, इसीलिए पत्र द्वारा मंत्र नहीं मँगाया जा सकता। बाद में भेंट होने पर इस पर चर्चा की जा सकती है।

इति-विनीत-सनातन

श्रीरामकृष्ण :

वाराणसी

२४-०७-१९६५

प्रिय ज्योतिर्मय,

तुम्हारा पत्र पाकर खुश हुआ। पढ़ना-लिखना कर रहे हो, ऐसा जानकर आनन्दित हूँ। संसार में तुम्हारी माँ के समान नारी दिखाई नहीं पड़ती, जो अपने पुत्र को संन्यासी बनाने हेतु आग्रहशीला हैं। हमने चिरकाल से यही देखा है, जिसके लिए संन्यासी होने की सभी ओर से सुविधा है, उसके लिए उसकी माँ ही एकमात्र बाधा बन जाती है। श्रीरामकृष्ण ने मातृभक्ति का जो आदर्श दिखाया है, वह दुर्लभ है। उन्होंने सर्वस्व त्याग किया था, किन्तु माँ का त्याग नहीं किया था। इसीलिए मातृभक्ति को हमलोग रामकृष्ण-भक्त के एक लक्ष्ण के रूप में जानते हैं। मेरी बड़ी प्रबल इच्छा है कि तुम्हारा संन्यास होने तक तुम्हारी माँ जीवित रहें। श्रीमान ध्रुव के इस पथ पर आने से वे अतीव शान्ति पाएँगी।

मेरी खुजली बढ़कर अब असह्य हो गई है। सम्प्रति लन्दन से लौटे एक डॉक्टर ने एक नुस्खा भेजा है। डॉक्टर के. आर. मुखर्जी हैं, जो पूजनीय निर्मल महाराज के एक्जिमा रोग को ठीक कर चुके हैं। मैं अभी उनसे परामर्श करके वही दवा ले रहा हूँ। देखो, क्या लाभ होता है।

अपना कुशल समाचार देना। मेरी स्नेहिल शुभेच्छा जानना।

इति शुभाकांक्षी

प्रेमेशानन्द

(क्रमशः)

दुर्गा पूजा विशेष

स्वामी विवेकानन्द की कुमारी पूजा और रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा में यशोदा माई द्वारा पूजित माँ दुर्गा का चित्र

स्वामी ध्रुवेशानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा

दुर्गापूजा सनातन हिन्दू धर्म की एक प्राचीन परम्परा है। परम्परानुसार भारत के एक-एक क्षेत्र में किसी एक विशेष देवता की पूजा में व्यापक रूप से एक बड़ी जनसंख्या की भागीदारी देखी जाती है। वैसे तो पृथ्वी के कई देशों में अब दुर्गापूजा मनाई जाती है, किन्तु विशेष रूप से इस पूजा में लोगों की भागीदारी सबसे अधिक भारत के पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश में होती है। इन दोनों बंगाल की जनता वर्ष भर प्रतीक्षा करती रहती है कि माँ दुर्गा पुन: कब आएगी!

स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं रामकृष्ण मठ-मिशन में दुर्गा-पूजा प्रारम्भ की थी। मठ-मिशन की दुर्गापूजा में लम्बे समय से कुमारी-पूजा की संयुक्ति हो चुकी है। यह भी सनातन धर्म की एक और प्राचीन परम्परा है। जम्मू के वैष्णोदेवी मन्दिर में आज भी प्रतिदिन तीन बालिकाओं की मातृभाव से कुमारी-पूजा की जाती है। मठ-मिशन के प्रारम्भ में भी स्वामीजी ने वराहनगर के उस भग्न भवन में पट में दुर्गापूजा की थी और बेलूड़ में प्रथम प्रतिमा में दुर्गापूजा के समय स्वामीजी की उपस्थिति में ही कुमारी पूजा हुई थी। स्वामीजी ने परिव्राजक जीवन में भी स्वयं ही कई बार कुमारी-पूजा की थी।

वर्ष १९०१, बेलूड़ मठ में स्वामीजी ने एक दिन अचानक राजा महाराज को बुला कर कहा – चलो हमलोग दुर्गा-पूजा करते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि उससे कुछ दिन पहले ही राजा महाराज ने स्वप्न देखा था कि 'माँ दुर्गा आ रही हैं'। उसके बाद से ही राजा महाराज के मन में आया था – 'कुछ दिनों बाद माँ आ रही हैं, दुर्गापूजा करने से कैसा रहेगा! किन्तु खुलकर यह बात बोल न सके। कारण कि इतना रुपया-पैसा कहाँ, कौन करेगा इतनी व्यवस्था! तभी तो, जब स्वामीजी ने ऐसा बोला, तो राजा महाराज भी काफी प्रसन्न हुए। इसके बाद बाबूराम महाराज को बुलाया गया। उन्होंने कहा, पूजा तो आ रही है, किन्तु इस समय मूर्ति कहाँ से मिलेगी। स्वामीजी ने कहा, ढूँढ़कर देखो, अवश्य मिलेगी। बाबूराम महाराज चिन्तित हो गए, कैसे इतनी बड़ी दुर्गा-पूजा होगी, इतने कम समय में कैसे यह सब आयोजन करना सम्भव होगा!

कुम्हार टोली में प्रतिमा खोजने के लिए लोग भेजे गए। वहाँ उन्हें एक मूर्ति मिली, वह भी एक संयोग ही था। जिस व्यक्ति ने मूर्ति बनवाई थी, वह लेने नहीं आया। इतना ही नहीं, उसने ऑर्डर के बाद भी कोई सम्पर्क ही नहीं किया। शिल्पकार ने कहा, इसीलिए मूर्ति पड़ी हुई है, आप लोग इसे ले जा सकते हैं। तब उसे ही बेलूड़ मठ में लाया गया था। स्वामी निर्भयानन्द आदि संन्यासियों ने कृष्णलाल व अन्यान्य ब्रह्मचारियों के साथ नौका पर प्रतिमा लायी। स्वामीजी ने अपने प्रिय बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर देवी का आह्वान 'गिरी गणेश आमार शुभकारी' गान गाकर किया था। उस पूजा में समस्त उपकरणों का संग्रह स्वयं स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने किया था। ब्रह्मचारी कृष्णलाल थे पूजक व स्वामी रामकृष्णानन्द जी के पितृदेव श्रीयुक्त ईश्वरचन्द्र भट्टाचार्य महाशय थे तंत्रधारक। बेलूड़ मठ में इस प्रकार से प्रथम दुर्गा-पूजा आरम्भ हुई।

उस समय बेलूड़ मठ अथवा रामकृष्ण मिशन के पास इतना रुपया-पैसा नहीं था। स्वामीजी की समाधि के पश्चात् तीन-चार वर्ष और पूजा हुई थी। किन्तु इसके बाद तीन-चार वर्ष कई कारणों से पूजा नहीं हो सकी। किन्तु घट (कलश) में पूजा प्रतिवर्ष ही हुई थी। तीन-चार वर्ष के बाद पुन: प्रतिमा में उसी प्रकार से पूजा प्रारम्भ हुई, जो आज भी अनवरत चल रही है। केवल मात्र बेलूड़ मठ में ही नहीं, अपतु मठ-मिशन के अनेक केन्द्रों में भी अब दुर्गापूजा हो रही है। उस समय राजा महाराज जहाँ भी जाते थे, विशेषकर जिस जगह पर वह पूजा के समय रहते थे, वहाँ दुर्गापूजा करने की चेष्टा करते थे। वे जब हरिद्वार आये थे, तब वहाँ दुर्गापूजा की। जब वे पूजा के समय चैन्नई में थे, तो वहाँ भी उन्होंने दुर्गापूजा की थी। चेन्नई एवं हरिद्वार में दुर्गापूजा कुछ वर्षों से (मूर्ति में) बन्द हो चुकी है।

बांग्लादेश में प्राय: सभी केन्द्रों में दुर्गापूजा होती है। भारत के पश्चिम बंगाल में रामकृष्ण संघ के अनेक केन्द्र में दुर्गापूजा होती है। बंगाल के बाहर वाराणसी, मुम्बई, लखनऊ, पटना तथा अनेक केन्द्रों में कई वर्षों से दुर्गापूजा होती चली आ रही है। रामकृष्ण मठ-मिशन में दुर्गापूजा में सर्वत्र ही माँ सारदा के नाम से संकल्प होता है। माँ सारदा की माँ ने जयरामवाटी में जगद्धात्री पूजा प्रारम्भ की थी। आज भी प्रतिवर्ष उनकी पूजा होती है। मठ-मिशन के अनेक केन्द्रों में शक्तिरूप में इसीलिये जगद्धात्री पूजा की जाती है। जयरामवाटी एवं कामारपुकुर में भी दुर्गापूजा प्रतिवर्ष होती है। दुर्गापूजा के साथ ही साथ अब अनेक केन्द्रों में कुमारी-पूजा भी होती है। सामान्यत: किसी ब्राह्मण परिवार की कन्या ६-७ वर्ष की कुमारी को जगन्माता का रूप मानकर उसकी पूजा की जाती है।

बेलूड़ मठ की प्रतिष्ठा के पूर्व विभिन्न समय में जब स्वामीजी भारत भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने कई बार कुमारी-पूजा की थी। ऐसी दो तीन घटनाएँ विभिन्न स्रोतों से विशेष रूप से ज्ञात होती हैं, जैसे एक बार गाजीपुर में, एक बार कश्मीर में और एक बार कन्याकुमारी में उन्होंने कुमारी पूजा की थी। कश्मीर में जिस बजरा अथवा नौका में वे थे, उसी के माझी की बेटी को स्वामीजी ने दूर से ही मातृरूपा देखा था। उनके मन में एक विशेष भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने कहा – मैं इस कन्या की कुमारी-पूजा करूँगा। उनके साथ निवेदिता और कुछ अन्य लोग भी थे। उपस्थित सभी लोगों ने कहा ठीक है, ऐसा किया जा सकता है। किन्तु, स्वामीजी जब बाहर आए, तब वहाँ उपस्थित स्थानीय ब्राह्मणों ने कहा – आप इसकी कुमारी पूजा कैसे करेंगे? यह तो मुसलमान लड़की है! स्वामीजी ने कहा, 'उससे क्या होता है! मैं तो एक संन्यासी हूँ, मेरे पास कोई जाति-भेद भी नहीं है और प्रत्येक नारी या नारी-जाति में माँ दुर्गा हैं। इसके पश्चात् उस कन्या को क्षीर भवानी माता के मन्दिर में ले जाकर स्वामीजी ने कुमारीपूजा की। ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव ने भी कुमारी-पूजा की थी। रामकृष्ण-मठ-मिशन में जहाँ भी शक्ति-पूजा होती है, साधारणत: एक दिन, विशेष रूप से अष्टमी अथवा नवमी को वहाँ कुमारी-पूजा अनुष्ठित होती है।

सन् १८९० की जनवरी के अन्त या फरवरी के प्रारम्भ में गाजीपुर में स्वामीजी ने जिस कुमारी का पूजन किया था, उसके साथ एक साध्वी का पूत जीवन और अलमोड़ा स्थित रामकृष्ण कुटीर में पूजिता माँ दुर्गा के पट के साथ एक ऐतिहासिक सम्बन्ध है। जनवरी, १८९० के अन्त में उत्तर भारत की यात्रा के उद्देश्य से स्वामीजी गाजीपुर पहुँचे। उन्होंने अपने बालसखा सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय के घर पर आतिथ्य ग्रहण किया। मणिका के पिता श्रीमान् गगनचन्द्र राय गाजीपुर के एक स्वनामधन्य प्रवासी बंगाली थे। गाजीपुर में धर्म और सांस्कृतिक जगत के क्षेत्र में उनकी काफी प्रसिद्धि थी। गगनचन्द्रजी के घर पर बीच-बीच में धार्मिक चर्चाओं का आयोजन होता था और उन सभाओं में साधु-संत और

विशिष्ट जन निमंत्रित किए जाते थे। स्वामीजी के आगमन की बात सुनकर गगनचन्द्र एक दिन आग्रहपूर्वक और यथोचित आदर के साथ उनको अपने घर पर ले गए। उस दिन गगन बाबू के घर की सभा में जो लोग उपस्थित थे, वे हमेशा की तरह वीर संन्यासी विवेकानन्द के अनलवर्षी भाषण और सुमधुर संगीत से अभिभूत हुए थे। सभा के अन्त में स्वामीजी ने अचानक गगनचन्द्र की नौ वर्षीय बेटी को देखा। स्निग्धकान्तिवाली उस कन्या का सौन्दर्य असाधारण उज्ज्वल था और उसकी तीरछी आँखें अस्वाभाविक दीप्तिमय थीं। गगनचन्द्र ने देखा, स्वामीजी एकदृष्ट होकर उनकी कन्या को देख रहे हैं। आनन्द से अभिभूत होकर गगन बाबू आगे आकर बोले – स्वामीजी यह हमारी बेटी मणिका है। आप इसे आशीर्वाद प्रदान करें।

स्वामीजी ने कहा – 'इस कन्या को मैंने बहुत पहले ही आशीर्वाद दे दिया है। अब मैं इसे मातृरूप में पूजा करना चाहता हूँ।

गगनचन्द्र आश्चर्य और हर्ष से व्याकुल हो उठे। स्वामीजी मुस्कुराए और बोले – 'तुम्हारी बेटी अत्यन्त विशुद्धसत्त्व है (अर्थात् बड़ी ही पवित्र है)। उसे देखते ही मैंने जगन्माता मानकर उसकी पूजा करने का संकल्प किया है। आप पूजा का आयोजन करें।'

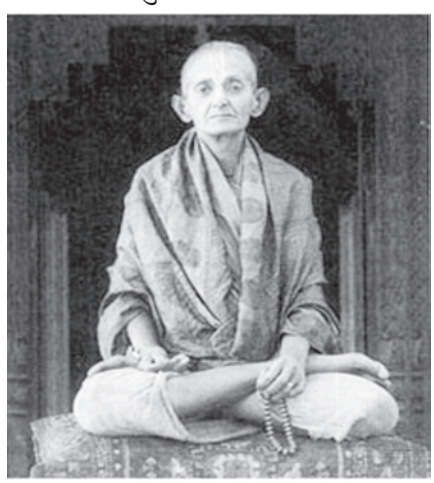
Sri Yashoda Mai

दूसरे दिन ही आनन्दित गगनचन्द्र ने अपने घर पर कुमारी-पूजा का आयोजन किया। स्वयं स्वामी विवेकानन्द के द्वारा कुमारी मणिका जगन्माता के रूप में पूजित हुई। पूजा के अन्त में स्वामीजी उस दिन आन्तरिक शान्ति में गहरे ध्यान में लीन थे। उस दिन की पूजा ने मणिका के अन्तर्मन को कितना प्रकाशित किया था, इसका अनुमान हम नहीं लगा सकते। परन्तु नौवें वर्ष की वह बालिका मणिका, जिसे स्वामीजी ने पूजित किया था, आगे चलकर साध्वी 'श्रीयशोदा माई' बनी और उनके सान्निध्य में अन्य बहुत-से लोग अध्यात्म के प्रकाश से प्रकाशित हुए।

श्रीयुक्त गगनचन्द्र राय की कन्या मणिका शैशव काल से ही अत्यन्त ही सरल और भक्तिमती थी। मणिका यथासमय विवाह के योग्य हुई। उसका विवाह श्री ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती से हुआ। वह कुमारी मणिका से श्रीमती मणिका देवी (१८८२-१९४४) हो गयी। उनके पति राय बहादुर श्री ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती बाद में सन् १९२० में लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति नियुक्त हुए। शांडिल्य गोत्रीय यह चक्रवर्ती ब्राह्मण-परिवार काफी धनी था और तत्कालीन बनारस शहर में उनका तीन मंजिला मकान था। निष्ठावान ब्राह्मण परिवार की संतान होने के बावजूद भी ज्ञानेन्द्र की शिक्षा बनारस के मिशनरी स्कूल, कलकत्ता विश्वविद्यालय एवं प्रयागराज की म्यूर सेन्ट्रल कॉलेज (Muir Central College) में हुई थी, जहाँ से उन्होंने एम.ए. और एल.एल. बी. की डिग्री प्राप्त की थी। उन्होंने प्रथमत: बरेली कॉलेज में, फिर क्रमश: इलाहाबाद की म्यूर कॉलेज में एवं तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय में गणित का अध्यापन किया था। उन्होंने कोर्ट में वकालत भी किया था। अंग्रेजी रहन-सहन में पले-बढ़े होने के बावजूद भी उन्हें अपने धर्म और शास्त्रीय ग्रंथों का पांडित्यपूर्ण ज्ञान था। वे पूरी निष्ठा के साथ अपने धर्मानुसार आचरण-अनुष्ठान करते थे, जिससे अंग्रेज और भारतीय सभी उनका समान भाव से आदर करते थे। वह प्रतिदिन प्रात: ३.०० बजे से लेकर ६.०० बजे तक नियमित रूप से जप-ध्यान करते थे। लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति होने बाद अधिकांश समय वे लोग लखनऊ में ही रहते थे। मणिका देवी उस समय लखनऊ शहर की फर्स्ट लेडी थी। उल्लेखनीय बात यह है कि सन् १८९३ में एनी बेसेन्ट आदि अन्य लोगों के साथ ज्ञानेन्द्र नाथ चक्रवर्ती भी शिकागो धर्म-महासम्मेलन में भाग लेने गए थे। वहाँ पर वे भी सबके साथ स्वामीजी के विश्व विजयी व्याख्यान को सुनकर मुग्ध हुए थे एवं यह बात उन्होंने मणिका देवी को पत्र लिखकर बतायी थी।

मणिका और ज्ञानेन्द्र की चार संन्तान थीं। उन्होंने लगभग चालीस बच्चों को शिक्षा-दीक्षा देकर उनका पालन-पोषण किया। बचपन से ही मणिका सांसारिक व भौतिक जीवन के प्रति उदासीन थी। धार्मिक विचारधारा के पति के सम्पर्क

में आने से मणिका का आध्यात्मिक ज्ञान और ईश्वरप्राप्ति की इच्छा दिन-प्रतिदिन तीव्र होती गई। उनका घर ही मानो आश्रम बन गया था। उनके घर पर कई लोग आते थे, जिनमें से एक लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रोनाल्ड निक्सन (१८९८-१९६५) थे, जिन्होंने बाद में यशोदा माई के शिष्य के रूप में 'श्रीकृष्ण प्रेम नाम ग्रहण' किया और उनकी सेवा में आजीवन स्वयं रहे।

चक्रवर्ती दम्पती की एक कन्या का विवाह तत्कालीन आई.सी.एस. अधिकारी के साथ तय हुआ था। उन दिनों की प्रथानुसार विवाह के पूर्व लड़कियों को उनके विवाह के विषय में कुछ बताया नहीं जाता था। इसके साथ भी ऐसा ही हुआ। इधर जब कन्या को पता चला कि उसका विवाह ठीक हो गया है, तब उसने कहा कि मैं विवाह नहीं करूँगी। माता-पिता ने कई प्रकार से समझाया, किन्तु वह किसी प्रकार भी राजी नहीं हुई। अन्त में निरुपाय हो चक्रवर्ती बाबू ने अपनी किसी सम्बन्धी की कन्या के साथ उन आई.सी. एस. अधिकारी का विवाह करवा कर प्रतिष्ठा बचायी थी।

मणिका देवी के मन में आध्यात्मिक जीवन यापन करने एवं साधन-भजन कर जीवन काटने की इच्छा सदैव ही थी। दिन के अधिकांश समय में वे साधन-भजन ही करती थीं। एक दिन उन्होंने अपने पति से कहा – ''मैं अब और अधिक संसार में नहीं रहूँगी। मैं संसार से दूर जाना चाहती हूँ और शेष जीवन साधन-भजन के द्वारा बिताना चाहती हूँ। स्वाभाविक रूप से चक्रवर्ती बाबू प्रारम्भ में यह चाहते थे कि संसार से अधिक दूर न जाकर वह उनके वाराणसी स्थित घर के ही ऊपर मंजिल पर रहें और स्वेच्छानुसार साधन-भजन करें। प्रयोजनानुसार ऐसी व्यवस्था कर दी जाएगी, जिससे वह स्थान अन्य लोगों की पहुँच से विच्छिन्न हो एवं वहाँ कोई भी उनकी साधना में विघ्न न डाल सके। आश्रम-जीवन के लिए जैसा प्रयोजन हो, वैसी व्यवस्था वहाँ कर दी जाएगी। किन्तु वे अपने सिद्धान्त पर अटल थीं। वे संसार में रहकर साधन-भजन नहीं करेंगी। दिनोंदिन उनकी यह इच्छा और मानसिक बल अत्यधिक प्रबल होने लगा। मणिका देवी अपने पति को पुन: संन्यास ग्रहण करने की इच्छा बताई। अन्तिम में दोनों लोगों की सम्मति से सन् १९२८ में वृन्दावन में गौड़ीय वैष्णव मतानुसार उनकी अनुष्ठानिक संन्यास दीक्षा हुई। श्रीमती मणिका देवी ने अपने मस्तक का मुंडन कर संन्यासी जीवन ग्रहण किया और उनका नाम हुआ श्री यशोदा माई। यह निर्णय लिया गया कि वे वृन्दावन में ही रहेंगी। अब उनकी छोटी-बेटी 'अर्पिता' जो मति रानी के नाम से बाद में अधिक परिचित हुईं, उन्होंने कहा कि वह भी माँ के साथ जाएँगी। माँ ने समझाया, पिता ने समझाया, तुम यहीं से साधन-भजन करो। किन्तु वे राजी नहीं हुईं। अन्तत: वे माँ के साथ ही संसार त्यागकर निकल पड़ीं। प्रारम्भ में वे लोग वृन्दावन में थे। किन्तु वहाँ का गर्म वातावरण यशोदा माई की शारीरिक स्थिति के लिए एकदम ही अनुकूल नहीं था, इसलिये वे लोग अलमोड़ा चले गए।

अलमोड़ा हिमालय के कुमाँऊ अंचल में समुद्र तल से प्राय: साढ़े पाँच हजार फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है। यशोदा माई एवं उनके साथी प्रारम्भ में अलमोड़ा स्थित हमलोगों के रामकृष्ण कुटीर के समीप में थोड़े नीचे जहाँ पर अभी होटल मैनेजमेंट इंस्टिट्युट बना है, वहाँ पर थे। वह लाला ब्रदीशाह का घर था। उसी घर में एक समय स्वामी तुरीयानन्द जी एवं स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने कुछ दिन तपस्या की थी। यशोदा माई के लिए उस घर को भाड़े पर लिया गया। चक्रवर्ती बाबू ने ही यशोदा माई के लिए यह सब व्यवस्था की थी। उस समय हम लोगों के आश्रम का ही एक भक्त परिवार जो वहाँ था, उनमें से एक व्यक्ति का नाम था श्री अनिल अडयी। श्री अनिल अडयी के माता-पिता महापुरुष महाराज से दीक्षित थे एवं वे स्वयं विशुद्धानन्द जी महाराज के द्वारा दीक्षित थे। उनकी पत्नी की दीक्षा स्वामी माधवानन्द जी से हुई थी। इनके भाई-बहन में कई लोग स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज से दीक्षित थे। सन् १९९३ में उनके माता-पिता अलमोड़ा से महाराज की चिट्ठी लेकर बेलूड़ मठ गए थे एवं महापुरुष महाराज से दीक्षित हुए थे। दीक्षा के समय अनिल एवं उनके बड़े भाई भी माता-पिता के साथ गए थे। उस समय अनिल आट्यि की आयु मात्र ३ वर्ष की थी। माता-पिता के दीक्षा के समय दोनों भाई बाहर ही थे। महापुरुष महाराज ने अपने सेवक को एक संतरा देकर बोला था – 'इसे बाहर खड़े दोनों बच्चों को खाने के लिये दे दो, नहीं तो वे लोग रोना-धोना शुरु करेंगे।' इस प्रकार उनके माता-पिता की दीक्षा हुई थी। बड़े भाई का देहान्त काफी पहले ही हो चुका है और दो-तीन वर्ष पहले ही अनिल आट्यि भी परलोक सिधार गए हैं। उनके साथ मेरा काफी परिचय था एवं सन् २००४ में लोग एक साथ ही कैलाश मानसरोवर के परिभ्रमण को

गए थे। किशोरावस्था में वे अलमोड़ा में ही थे एवं यह सब बात उनके द्वारा ही बताई गई है। उन्होंने मुझे कहा था, जिस समय यह घर भाड़ा पर लिया गया था, उस समय घर में नौकर-चाकर दरबान आदि सब ज्ञानेन्द्र चक्रवर्ती बाबू द्वारा रखे गये थे और ऐसी व्यवस्था की गई थी, जैसे घर के अंदर कोई रानी-महारानी हो, किन्तु घर के भीतर श्री यशोदा माई अति साधारण संन्यासी की भाँति जीवन यापन करती थीं। उनके अंग्रेज भक्त श्री कृष्ण प्रेम अर्थात् प्रोफेसर रोनाल्ड निक्सन जिन्होंने यशोदा माई से ही संन्यास ग्रहण किया था, वह भी इसी घर में रहते थे और उनकी देखभाल करते थे। किन्तु इस घर में धीरे-धीरे भक्तों की भीड़ बढ़नी शुरू हो गई। इसके पश्चात् उनलोगों ने यहाँ से और ३०-३५ किलोमीटर दूर पिथौरागढ़ के मार्ग में मीरतोला नामक स्थान में स्थाई आश्रम बनवाया। स्कूल में पढ़ने की अवस्था में अनिल एवं उनके बड़े भाई छुट्टी के दिनों में मीरतोला जाते थे। यशोदा माई को भी वे लोग दादी माँ (ठाकुर माँ) कहकर ही सम्बोधित करते थे। वे भी इन दोनों भाइयों को

बहुत प्रेम करती थीं एवं मीरतोला आने के लिए उनके लिये कभी-कभी घोड़ा भी भेज दिया करती थीं।

श्री यशोदा माई के पास दुर्गा माँ का श्रीरामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा में एक ऑयल पेटिंग किया हुआ चित्र था, जिसे वे अपने ही कमरे में रखकर उसकी पूजा किया करती थीं। अपने शरीर त्याग के पूर्व ही उन्होंने अपने सेवकों को कहा था, 'मेरे देह त्याग के पश्चात् दुर्गा माँ के चित्र को रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा में भेज देना।' सन् १९४४ में मीरटोला आश्रम में ही उनका शरीर-त्याग हुआ था। इसके बाद से ही हमलोगों के रामकृष्ण कुटीर के मन्दिर में वह चित्र रखा हुआ है और इसी चित्र में ही रामकृष्ण कुटीर में नवरात्रि की दुर्गापूजा होती चली आ रही है।

इस घटना को व्यतीत हुए काफी समय हो गये हैं। उल्लिखित माँ दुर्गा का चित्र का विवरण न होते हुए भी उस पर समय की छाप पड़ी है। २ वर्ष पहले पुन:लगाने के लिये मैंने उस चित्र के फ्रेम को खोला था। तब देखा कि वह छवि सन् १९३० में बनायी गई थी। जितना कुछ पढ़ा जाना सम्भव था, उसमें देखा कि डी. बोस नामक एक चित्रकार ने उस चित्र को बनाया था। जिनका हस्ताक्षर वर्ष के साथ चित्र के नीचे अंकित है। सुना है कि स्वयं यशोदा माई भी अच्छा चित्र बनाती थी। इसलिये हमलोगों में से कई लोगों की यह धारणा थी कि यह सब उनके ही द्वारा अंकित है। किन्तु चित्र के फ्रेम को खोलने के पश्चात् ही सटीक धारणा हो पाई। फिर भी यशोदा माई के द्वारा अंकित कुछ चित्र भक्तों के गृहों में एवं मीरतोला स्थित आश्रम में हैं।

स्वामीजी ने मणिका नामक जिस कुमारी की मातृभाव से पूजा की थी, परवर्तीकाल में वही यशोदा माई बनी, जिनके द्वारा पूजित दुर्गा माँ के चित्र की पूजा अब हमारे अलमोड़ा स्थित रामकृष्ण कुटीर में नवरात्रि के प्रारम्भ से सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी तक की जाती है। जो भी व्यक्ति माँ दुर्गा के चित्र को देखता है, वह अभिभूत हो जाता है, इतना सुन्दर चित्र है, जैसे जीवन्त माँ दुर्गा बैठी हुई हैं। दुर्गा माँ के चित्र के साथ स्वामीजी भी परोक्ष रूप से जुड़े हुए हैं और इसे देखने के साथ ही स्वामीजी का स्मरण आना स्वभाविक है। भक्त लोग कई बार इस विषय को सोचकर आह्लादित होते हैं। निश्चय ही जो हुआ है अथवा जो हो रहा है, उसमें स्वामीजी की इच्छा और आशीर्वाद विद्यमान है। तभी तो स्वामी विवेकानन्द पूजित कुमारी मणिका, श्री संन्यासिनी यशोदा माई और उनके द्वारा पूजित माँ दुर्गा का पट आज भी अलमोड़ा स्थित रामकृष्ण कुटीर में संरक्षित एवं पूजित है। जय माँ जय माँ दुर्गा। ○○○

सूचना

अक्तूबर, २०२३ से विवेक-ज्योति पत्रिका के शुल्क में वृद्धि की जा रही है। कृपया विस्तृत विवरण पृष्ठ संख्या ५०६ में देखें।

प्रश्नोपनिषद् (४०)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

पंचम प्रश्न

(ओंकार उपासना – अपरा विद्या के अन्तर्गत आने पर भी इसके द्वारा क्रममुक्ति प्राप्त हो सकती है, अत: परा-विद्या के प्रसंग में ही इसकी व्याख्या की जा रही है।)

अथ हैनं शैब्य: सत्यकाम: पप्रच्छ।

स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु

प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत।

कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति।।५/१।।

अन्वयार्थ – अथ (इसके बाद) शैब्य: (शिबिपुत्र) सत्यकाम: (सत्यकाम ने) एनम् ह (उन पिप्पलाद से) पप्रच्छ (पूछा) – भगवन्, मनुष्येषु (मनुष्यों में) स: य: ह वै (जो कोई भी) प्रायण-अन्तम् (मृत्यु तक, आजीवन) तत् (उस) ओंकारम् (प्रणव का) अभिध्यायीत (ध्यान करते हैं), स: (वे) तेन (उस उपासना के द्वारा) कतमं वाव लोकम् (ज्ञान तथा कर्म द्वारा प्राप्त हो सकनेवाले लोकों में से कौन-से लोक पर) जयति (विजय प्राप्त करते हैं?) – इति।

भावार्थ – इसके बाद शिबिपुत्र सत्यकाम ने उन पिप्पलाद से पूछा – ''भगवन्, मनुष्यों में, जो व्यक्ति मृत्यु तक (आजीवन, निष्ठापूर्वक) उस ओंकार (ॐ) का ध्यान करते हैं, वे उस उपासना के द्वारा (ज्ञान तथा कर्म द्वारा प्राप्त हो सकनेवाले लोकों में से) कौन-से लोक पर विजय प्राप्त करते हैं?''।।५/१।।

भाष्य – अथ हैनं शैब्य: सत्यकाम: पप्रच्छ; अथ इदानीं पर-अपर-ब्रह्मप्राप्ति-साधनत्वेन-ओंकारस्य उपासन-विधित्सया प्रश्न आरभ्यते –

भाष्यार्थ – इसके बाद शिबि के पुत्र सत्यकाम ने पूछा। अब, इस समय पर तथा अपर ब्रह्म की ओंकार के रूप में उपासना का विधान करने की इच्छा से, यह (अगला) प्रश्न आरम्भ किया जा रहा है –

भाष्य – स: य: कश्चिद् ह वै भगवन् मनुष्येषु मनुष्याणां मध्ये तद् अद्भुतम् इव प्रायणान्तं मरणान्तम्, यावत्-जीवम् – इति एतत्, ओंकारम् अभिध्यायीत अभिमुख्येन चिन्तयेत्, बाह्य-विषयेभ्य उपसंहृतकरण: समाहित-चित्तो भक्ति-आवेशित-ब्रह्मभाव ओंकारे, आत्म-प्रत्यय-सन्तान-अविच्छेदो भिन्न-जातीय-प्रत्ययान्तर-अखिलीकृत: निर्वातस्थ-दीपशिखा-सम: अभिध्यान-शब्दार्थ:।

भाष्यार्थ – हे भगवन्, मनुष्यों में से जो कोई भी दुर्लभ व्यक्ति; अद्भुत रूप से अपनी मृत्यु तक अर्थात् आजीवन, बाह्य विषयों से अपने अन्त:करण को समेटकर, (ओंकार से) भिन्न प्रकार के भावों को दूर रखते हुए, भक्तिपूर्ण ब्रह्मभाव के साथ ओंकार के प्रति आत्म-भाव से, वायुरहित स्थान में दीपक की लौ के समान स्थिर भाव से, अविच्छिन्न रूप से (निरन्तर) ध्यान करता रहता है, (वह किस लोक को जीतता है)?

भाष्य – सत्य-ब्रह्मचर्य-अहिंसा-अपरिग्रह-त्याग-संन्यास-शौच-सन्तोष-अमायावित्व-आदि-अनेक-यम-नियम-अनुगृहीत: स एवं यावज्-जीव-व्रत-धारण: कतमं वाव, अनेके हि ज्ञान-कर्मभि: जेतव्या लोका: तिष्ठन्ति तेषु तेन ओंकार-अभिध्यानेन कतमं स लोकं जयति।।५/१।।

भाष्यार्थ – सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, असंग्रह, त्याग, संन्यास, शौच, सन्तोष, अमायावित्व (निष्कपटता) आदि अनेक यम-नियमों को, अपने आजीवन व्रत के रूप में धारण किया हुआ और ओंकार का ध्यान करता हुआ वह व्यक्ति उपासना तथा कर्म से प्राप्त होनेवाले (गन्धर्व से लेकर ब्रह्मलोक तक के) लोकों में से कौन-से लोक की प्राप्ति करता है? **(क्रमश:)**

उन्नत व्यक्तित्व और समाकलित जीवन का महत्त्व

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

सामान्य अर्थ में, सदैव प्रसन्नचित्त तथा प्रफुल्ल रहना, व्यक्ति के उन्नत व्यक्तित्व को दर्शाता है। ऐसा व्यक्तित्व प्रसन्नता बिखेरता है और दूसरों को भी आनन्द प्रदान करता है। उन्नत व्यक्तित्व सन्तुलन, हर्ष, शान्ति, ऊर्जा, जन-उन्मुखता, विनम्रता और उत्साह से भरा होता है। स्वामी विवेकानन्द ऐसे ही एक व्यक्तित्व थे, वे सदैव आनन्दित, समाकलित और सही दिशा में उन्मुख थे।

आइए, अब हम एक उच्चकोटि के व्यक्तित्व की कुछ उल्लेखनीय विशेषताओं की चर्चा करते हैं।

१. विश्वास – स्वामी विवेकानन्द के अनुसार : श्रद्धा, श्रद्धा ! अपने आप पर श्रद्धा, परमात्मा में श्रद्धा यही महानता का एकमात्र रहस्य है। अपने आप पर श्रद्धा करना सीखो! इसी आत्मश्रद्धा के बल से अपने पैरों आप खड़े होओ और शक्तिशाली बनो। इस समय हमें इसी की आवश्यकता है। जो स्वयं पर विश्वास करते हैं उनका व्यक्तित्व उच्च कोटि का होता है। विश्वास हमें आशा और साहस देता है। विश्वास किसी भी कार्य को करने की पहली सीढ़ी है।

एक गाँव भीषण सूखे की चपेट में आ गया। एक सुबह गाँव के लोग पुराने मंदिर के सामने बैठे एक साधु के पास गए और उनसे जल देवता वरुण से प्रार्थना करने की विनती की। साधु ने कहा, 'ठीक है। मैं एक शर्त पर प्रार्थना करूँगा – तुम सबको अगाध श्रद्धा रखनी होगी कि वर्षा होगी। किसी को कोई संशय नहीं होना चाहिए।' सभी गाँव वाले एक स्वर में चिल्ला उठे, 'हमें आप पर पूर्ण विश्वास है।' साधु ने कहा, 'मैं प्रार्थना करूँगा और आप सभी को कल सुबह जल देवता का स्वागत करने के लिए इस मंदिर के सामने एकत्रित होना होगा।' अगली सुबह पूरा गाँव मंदिर के सामने एकत्रित हो गया।

साधु ने गाँववालों की ओर देखा और कहा, 'अच्छा, तुम्हें बारिश चाहिए? आप में से कोई विश्वास नहीं करता। कोई नहीं ! कोई नहीं !' साधु की इस बात से गाँववाले सहम गए। एक बच्चे की ओर इशारा करते हुए साधु ने कहा, 'सिवाय इस छोटे बच्चे के, तुम लोगों में से किसी ने भी छाता नहीं लाया। गाँववालों की दृष्टि बच्चे पर पड़ी। साधु ने मुस्कराते हुए कहा, देखो इस बच्चे को, मुझ पर और मेरी बातों पर पूरा विश्वास था, इसलिए छाता ले आया है।' बालक को पूरा विश्वास था कि साधु अपनी प्रार्थना से वर्षा लायेंगे!

विश्वास किसी विचार के प्रति मात्र बौद्धिक स्वीकृति नहीं है; विश्वास अन्ततः कार्य में प्रकट होता है। यह केवल बात करना और अंगीकार करना नहीं, बल्कि उस पर खरा उतरना है। यही विश्वास है और यही सचमुच में एक उन्नत व्यक्तित्व बनाता है।

२. सकारात्मक सोच – व्यक्तित्व के विकास के लिए सकारात्मक होना आवश्यक है। जीवन के उज्ज्वल पक्ष को देखते हुए कुशलता से समस्याओं को अवसरों में बदलने का प्रयास करना चाहिए। सकारात्मक व्यक्ति इस बात पर विश्वास करते हैं, 'Do not take your failure to the heart and success to the head.' आइए इस पर विचार करें : एक महान् वैज्ञानिक एक नई तकनीक के साथ प्रयोग कर रहा था और बार-बार अपने प्रयास में असफल हो रहा था। लगभग सैकड़ों प्रयासों के बाद अन्त में वह आविष्कार करने में सफल हो ही गए। जिसने उन्हें संघर्ष करते और सफल होते देखा था, उत्सुकता से उनसे पूछा : क्या आप बार-बार असफलताओं से निराश नहीं हुए? आप कितनी बार असफल हुए। वैज्ञानिक ने उत्तर दिया, 'नहीं, अब मैं उन ९९ विधियों को जानता हूँ जिनमें वह आविष्कार नहीं किया जा सकता था।'

वास्तव में उन्नत व्यक्तित्व वाले लोग हमेशा सकारात्मक होते हैं, इसलिए वे प्रसन्नचित और तनावमुक्त रहते हैं।

३. आत्म-अनुशासन – आत्म-अनुशासन का अर्थ है आत्म-नियंत्रण। इसका अर्थ है शरीर (अर्थात् इंद्रियों) और

मन (अर्थात् सभी विचारों, भावनाओं और इच्छा) को नियंत्रित करना। एक उन्नत व्यक्तित्व अत्यधिक अनुशासित, संगठित होता है। आत्म-अनुशासन के कारण व्यक्ति आत्मविश्वास और दृढ़ विश्वास से भरा होता है।

जैसे कछुआ अपने पैरों और सिर को खोल के अन्दर दबा लेता है और यदि हम उसको मारने का तथा उसके टुकड़े-टुकड़े करने का प्रयास करें, फिर भी वह पैरों और सिर को बाहर नहीं निकालेगा, वैसे ही, जिस व्यक्ति ने भावनाओं और अंगों पर नियंत्रण कर अपने आपको अपरिवर्तनीय रूप से स्थापित किया है, वह अपनी आंतरिक शक्तियों को नियंत्रित करता है और कोई उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध बाहर नहीं खींच सकता। ऐसा व्यक्ति सदैव सुरक्षित रहता है; वह कोई बुराई नहीं कर सकता। उसे किसी भी के संग में रख लें, उसे कोई भय नहीं होगा।

४. लोगों के अनुकूल – व्यक्ति को लोगों के साथ दृढ़ और सकारात्मक सम्बन्ध बनाए रखने के लिए लोगों के अनुकूल अपनी भावनाओं को प्रभावी ढंग से प्रेषित करना चाहिए। कोई वास्तव में लोगों के अनुकूल तभी हो सकता है, जब वह नि:स्वार्थ हो। लेकिन क्या आज इस भौतिक संसार में कोई नि:स्वार्थी हो सकता है? इसके बारे में भविष्यवाणी करते हुए, सौ वर्ष पूर्व स्वामीजी ने कहा था, 'नि:स्वार्थता अधिक लाभदायी होती है, केवल लोगों में इसका अभ्यास करने का धैर्य नहीं होता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह अधिक लाभकारी है। प्रेम, सत्य और नि:स्वार्थता न केवल वाक्पटुता के नैतिक अलंकार हैं, बल्कि वे हमारे सर्वोच्च आदर्श का निर्माण करते हैं, क्योंकि उनमें शक्ति का प्रकटीकरण निहित है।'

एक नि:स्वार्थ व्यक्ति हमेशा दूसरों की सहायता करना चाहता है। वह स्वयं की परवाह नहीं करता, वह आत्म-महत्त्व की भावना से मुक्त होता है। आइए, हम इस दन्तकथा पर विचार करें : एक महिला पहले लगभग आधे घंटे तक एक प्रसिद्ध लेखक से बात करती है और बाद में उस महिला ने कुछ समय के लिए एक महान् नीति-उपदेशक (स्टेट्समैन) के साथ बातचीत की। उस महिला की एक सहेली ने उससे पूछा, 'आप प्रसिद्ध लेखक से बात कर रही थीं और फिर राजनेता से। आपने दोनों के बीच क्या अंतर देखा?'

महिला ने हँसते हुए कहा, 'जब मैं लेखक से बात कर रही थी, तब उन्होंने मुझे अनुभव कराया कि वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन जब मैं स्टेट्समैन से बात कर रही थी, तब उन्होंने मुझे अनुभव कराया कि 'मैं बहुत महत्त्वपूर्ण हूँ।'

जिन लोगों का व्यक्तित्व उन्नत होता है, उनमें मिथ्या अहंकार नहीं होता। उनके लिए हर व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है। वे जानते हैं कि दूसरों को प्रसन्न रखने में ही वास्तविक आनन्द है। एक संस्कृत कहावत कहती है, 'सन्तोषं जनयेत् प्रज्ञा: तदेव ईश्वरपूजनं – दूसरों को आनन्द प्रदान करना ही ईश्वर की सच्ची पूजा है।'

५. विचारों का आदान-प्रदान या संवाद – उन्नत व्यक्तित्व वाले लोग संवाद या वाक्पटुता में निपुण होते हैं। वे विचारों को व्यक्त करने के लिए संवाद करते हैं न कि प्रभावित करने के लिए। वे अपने विचारों और शब्दों में बहुत स्पष्ट हैं। वे जो कहते हैं उसे आचरण में लाते हैं, और वैसा ही आचरण करते हैं जैसा बोलते हैं। यह उन्हें और अधिक सराहनीय बनाता है। वे स्पष्ट रूप से समझते हैं कि 'घनिष्ठता (क्लोज़)' और 'स्पष्टता (ओपन)' शब्द विपरीत शब्द नहीं हैं।

वे जानते हैं कि 'स्पष्टवादी' व्यक्ति में लोगों की बात सुनने की अद्भुत क्षमता और धैर्य होता है। वे न केवल बोले गए शब्दों को, बल्कि अनकहे शब्दों को भी सुन सकते हैं। यह उन्हें वास्तव में सहानुभूतिपूर्ण बनाता है।

६. सहायक दृष्टिकोण : कहा जाता है कि इस संसार में दो प्रकार के लोग रहते हैं, पहले 'जो जहाँ जाते हैं वहाँ आनन्द लाते हैं' और 'दूसरे जिनके चले जाने के बाद आनन्द मिलता है।' उन्नत व्यक्तित्व पहले प्रकार के होते हैं। वे कठिन परिस्थिति में दूसरों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। जब कोई उदास हो, तो सकारात्मक लोग उसकी उदासी को भूलाने के लिए हँसाते हैं, जबकि नकारात्मक लोग हँसना भूल जाते हैं। वे जानते हैं कि हास्य जीवन के पहियों के लिए स्नेहक है, जिसके बिना अधिक कोलाहल और अधिक घर्षण होता है।'

निष्कर्ष : विवेकानन्द के अनुसार, मनुष्य केवल मनुष्य भर चाहिए. एक मनुष्य को तभी मनुष्य कहा जा सकता है, जब वह श्रद्धा, आत्म-अनुशासन, नि:स्वार्थता से ओतप्रोत हो तथा जीवन के प्रति प्रफुल्लित और उन्नत दृष्टिकोण रखता हो। ऐसे व्यक्ति का ही उन्नत व्यक्तित्व होता है। उन्नत व्यक्तित्व के उपर्युक्त वर्णित लक्षण वास्तव में तभी सम्भव हैं, जब व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक रूप से उन्नत हो। ○○○

शास्त्रानुसार दुर्गामहास्नान की नदियाँ

उत्कर्ष चौबे, बी.एच.यू, वाराणसी

शास्त्रों में भगवती दुर्गा की पूजा के विषय में कहा गया है – **शारदीय महापूजा चतु:कर्ममयी शुभा।**

तां तिथित्रयमासाद्य कुर्य्याद् भक्त्या विधानत:।।

शारदीय दुर्गापूजा को महापूजा की संज्ञा दी गयी है, क्योंकि शास्त्रीय विधानानुसार सप्तमी, महाष्टमी व महानवमी, इन तीनों तिथियों में चतु:कर्म किये जाते हैं। स्मार्तप्रवर रघुनन्दन भट्टाचार्य ने अपने ग्रन्थ दुर्गोत्सव तत्त्व में चतु:कर्म का आश्रय स्पष्ट करते हुए लिखा है – **'चतु:कर्ममयी स्नपनपूजनबलिदानहोमरूपा सा च प्रतिवर्षं कर्त्तव्या'** – अर्थात् स्नपन, पूजन, बलिदान व हवन, इन चार अंगों से विभूषित हो दुर्गोत्सव महापूजा करनी चाहिये।

तिथित्रयों में प्रथमत: महास्नान से ही अनुष्ठान प्रारम्भ होता है, जिसमें नानाविध द्रव्यों से माँ दुर्गा को स्नान कराया जाता है। जो स्नान बृहद् व श्रेष्ठ होता है, उसे महास्नान कहते हैं। वास्तव में, देवी के स्नान में पर्याप्त वस्तुओं की आवश्यकता हमें विस्तृत समारोह की भव्यता की याद दिलाती है, जो दुर्गापूजा को 'कलि के अश्वमेघ' विशेषण की सार्थकता सिद्ध करती है। विभिन्न सरिताओं, जलाशयों, तीर्थों, पवित्र स्थलों की मृत्तिकाओं, वनस्पतियों, पंचगव्यादि वस्तुओं से प्रतिमा के सम्मुख दर्पण यंत्रवत् स्थापित कर देवी के प्रतिबिम्ब को विभिन्न मन्त्रों, सस्वर वैदिक सूक्तों तथा नाना राग-रागिनियों के साथ स्नान कराते हैं।

महास्नान के प्रथम चरण में भृङ्गार स्नान में विभिन्न नदियों के जल से भगवती को स्नान कराया जाता है तथा मन्त्रक्रम में भारतीय उपमहाद्वीपीय स्थित विभिन्न नदियों के नाम भी आते हैं। नदियों और मानव सभ्यता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहा है। सभ्यताएँ नदियों के किनारे ही विकसित हुई हैं। हमारे शास्त्रों में विशेषकर पुराणों में नदियों से जुड़ी कथाएँ दृष्टिगोचर होती हैं तथा इनके नामकरण के पीछे की कथाएँ भी मिलती हैं। किन्तु इनके पौराणिक नामों से आज हम अनभिज्ञ हैं। महाकाल संहिता के गुह्यकाली खण्ड के त्रयोदश पटल से उद्धृत भृङ्गार स्नान के मन्त्र में आता है –

शीता चालकानन्दा च चक्षुर्भद्रा दृष्द्वती।
तुङ्गभद्रा कृष्णवर्णा पयोष्णी नर्मदा तथा।।
ताप्ती भीमरथी शिप्रा वितस्तैरावती तथा।
गोदावरी विपाशा च शतद्रुः सिन्धुरेव च।।
चर्मण्वती च कावेरी ताम्रपर्णी महानदी।
करतोया बाहुदा च शोणा वेत्रवती तथा।
देविका भैरवी कोका गोमती चोत्पलावती।।
आत्रेयी भारती गङ्गा यमुना च सरस्वती।
सरयुर्गण्डकी पुण्या श्वतेगङ्गा च कौषिकी।।
भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा।
सर्वासुमनसो भूत्वा भृङ्गारैः स्नापयन्तु ताः।।

क्रमश: इन पौराणिक नदियों के संक्षिप्त परिचय को हम एक-एक कर आधुनिक नामों सहित जानेंगे।

१. शीता – सीता नामक एक नदी कर्नाटक राज्य में मध्व सम्प्रदाय के केन्द्र स्थल उडुपी जिले में बहती है। किन्तु एक और नदी का उल्लेख शास्त्रों में शीता के नाम से मिलता है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

२. अलकानन्दा – यह उत्तराखण्ड राज्य में बहनेवाली अत्यन्त ही पवित्र नदी है, जिसके पावन तट पर बद्रीनाथ धाम स्थित है। देव प्रयाग में अनकानन्दा व भागीरथी का संगम होता है और दोनों मिलाकर गंगा कहलाती हैं। अलकनन्दा की पाँच सहायक नदियाँ हैं, जो गढ़वाल क्षेत्र में ५ अलग-अलग स्थानों पर अलकनन्दा से मिलकर पंच प्रयाग बनाती हैं।

३. चक्षुर्नदी – चक्षु नदी ऑक्सस या अमु दरिया का प्राचीन संस्कृत नाम है, जो हिन्दू कुश के उत्तर में पामीर पर्वत से निकलकर मध्य एशिया और अफगानिस्तान से बहते हुए अराल सागर में मिलती है। इस नदी का उल्लेख रामायण में वक्षु तथा महाभारत व पुराणों में चक्षु के रूप में आता है।

४. भद्रा – भद्रा नदी कर्नाटक राज्य में बहनेवाली तुंगभद्रा नदी की एक उपनदी है, जिसका उद्‌गम स्थान चिकमगलूर जिले में है। किन्तु महास्नान के मन्त्र में यहाँ इस नदी से अभिप्राय नहीं है। क्योंकि उपरोक्त चारों नदियों के विषय में विष्णु पुराण व भागवत महापुराण में गंगावतरण के सम्बन्ध में कथा आती है कि गंगाजी भगवान के श्रीचरण से निकलकर चन्द्रमा को जलमग्न करती हुई मेरू पर्वत के ऊपर ब्रह्मपुरी से बहुते हुए चार शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं, जिन्हें सीता (तारिम या यारकन्द नदी चीन देश में), अलकनन्दा (भारतवर्ष में), चक्षु (ऑक्सस या अमुदरिया

सीता (तारिम या यारकन्द नदी चीन देश में)

उज्बेकिस्तान, अफगानिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, ताजिकिस्तान देशों में) और भद्रा (सिर दरिया या याकसारतेस किर्गिजस्तान, ताजिकिस्तान, उज्बेकिस्तान और काजाखस्तान के देशों में) बहती हैं। पहली सीता मेरु पर्वत के पूर्व की ओर निचले पर्वतों के शिखरों पर बहती हैं और भद्राश्व देश से होते हुए समुद्र तक जाती है। अलकनन्दा दक्षिण की ओर बहती है तथा चक्षु सभी पश्चिमी पहाड़ों को पार करने के बाद व केतुमाल देश से गुजरने के बाद समुद्र में गिरती है। भद्रा उत्तर कुरु के देश से होती हुई उत्तरी महासागर से मिलती है।

५. दृषद्वती – ऋग्वेद की नदी-स्तुति में इसका नाम सरस्वती व सिन्धु के साथ आया है। इसे आजकल घग्घर और राखी कहते हैं, किन्तु विद्वानों में मतभेद है। महाभारत में यह कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत मानी गई है। मनुस्मृति में इसे ब्रह्मावर्त की सीमा पर प्रवाहित होते कहा गया है।

६. तुङ्गभद्रा – दक्षिण भारत में तुंग एवं भद्रा नामक दो नदियों के मिलन से तुङ्गभद्रा नामक पवित्र नदी का जन्म होता है, जो कर्नाटक एवं आन्ध्र प्रदेश में बहती हुई कृष्णा नदी में मिल जाती है। रामायण में तुंगभद्रा को पंपा के नाम से जाना जाता था। आचार्य शंकर द्वारा स्थापित दक्षिणाम्नाय शृंङ्गेरी शारदा पीठ तुङ्गभद्रा तट पर ही अवस्थित है।

७. कृष्णा – दक्षिण भारत की एक महत्त्वपूर्ण नदी है, जिसका उद्‌गम महाराष्ट्र राज्य में महाबलेश्वर के समीप पश्चिमी घाट शृंखला से होता है। यह महाराष्ट्र, कर्नाटक और आन्ध्रप्रदेश में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में मसुलीपट्‌नम के निकट गिरती है। पुराणों में कृष्णा को विष्णु के अंश से सम्भूत माना गया है।

८. वर्णा/वेणी/वेण्या – कृष्णा की मुख्य सहायक नदी वर्णा को मराठी में वाराना नदी कहते हैं, जो महाराष्ट्र में सांगली और कोल्हापुर जिलों से होकर बहती है। श्रीमद्‌भागवत में इसका उल्लेख है – **'...कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावती तुंगभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी ...'** कृष्णा और वेणी के संगम पर माहुली नामक प्राचीन तीर्थ है। महाभारत के सभापर्व में कृष्णा को वर्णा के साथ कृष्णवेणा कहा गया है।

कृष्णवेणा

९. पयोष्णी – वर्तमान में वेनगंगा के नाम से प्रसिद्ध यह नदी विन्ध्य पर्वत से दक्षिण की ओर मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र में प्रवाहित होते हुए गोदावरी में जा मिलती है। सृष्टि के प्रारम्भ में जब ब्रह्माजी यज्ञ कर रहे थे, तो उनके प्रणीता पात्र के गर्म जल से इस 'पयोष्णी नदी' की उत्पत्ति हुई। नल-दमयन्ती प्रसंग में पयोष्णी नदी का उल्लेख आया है।

पयोष्णी नदी

१०. नर्मदा – मैकलसुता माँ नर्मदा अपने उद्‌गम विंध्याचल की मैकाल पहाड़ी शृंखला में अमरकंटक नामक स्थान से निकलकर छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात से होकर नर्मदा करीब १३१० किमी. का प्रवाह-पथ तय कर भरौंच के आगे खंभात की खाड़ी में विलीन हो जाती है। तपोभूमि नर्मदा ही एक मात्र ऐसी नदी है, जिसकी

परिक्रमा की जाती है। पद्मपुराण के आदिखण्ड में 'पुण्या सर्वत्र नर्मदा' के उद्भव से लेकर संगम तक दस करोड़ तीर्थ के होने का उल्लेख है –

नर्मदा संगमं यावद् यावच्चामरकण्टकम्।
तत्रान्तरे महाराज तीर्थकोट्यो दश स्थिताः।।

११. ताप्ती – तापी नाम से प्रसिद्ध यह नदी मध्य प्रदेश के बैतूल जिले के मुल्ताई से उत्पन्न होकर सतपुड़ा पर्वत-क्षेत्रों के मध्य से पश्चिम की ओर बहती हुई महाराष्ट्र व गुजरात होते हुए खम्भात की खाड़ी में गिरती है। विष्णुपुराण में ताप्ती को ऋक्ष पर्वत से उद्भूत माना गया है – 'तापी पयोष्णीनिर्विन्ध्याप्रमुखा ऋक्षसम्भवाः' तथा ये सूर्य एवं उनकी पत्नी छाया की पुत्री तथा शनि की बहन हैं, जिनका विवाह वरुण देव के अवतार संवरण नामक राजा से हुआ।

१२. भीमरथी – भीमा नदी के नाम से प्रसिद्ध इस नदी का उद्गम पश्चिमी घाट की भीमशंकर पर्वत श्रेणी से होता है और यह कर्नाटक में कृष्णा नदी से जा मिलती है। महाभारत के वनपर्व में पाण्डवों के पुरोहित धोम्य ने दक्षिण दिशा के तीर्थों के सम्बन्ध में इस नदी का उल्लेख –

वेणा भीमरथी चैव नद्यौ पापभयापहे।
मृगद्विजसमाकीर्णे तापसालय-भूषिते।।

इत्यादि कहकर किया है। इसे समस्त पापभय का नाश करनेवाली तथा इसके तट पर मृगों और द्विजों का निवास व तपस्वियों का आश्रम बताया गया है।

१३. शिप्रा – शिप्रा नदी उज्जयिनी में बहनेवाली चम्बल नदी की सहायक नदी है। कालिदास ने मेघदूत व रघुवंश में इस नदी की सुरम्यता का वर्णन '**शिप्रातरंगानिलकम्पितासुविहर्तुमुद्यानपरम्परासु**' कहकर किया है। सिंहस्थ कुम्भ मेला अवन्ती नगर में इसी के पावन तट पर लगता है, जहाँ विहितावतार महाकाल ज्योतिर्लिंग विद्यमान है।

१४. वितस्ता – सप्त सिन्धुओं में से एक झेलम नदी या काश्मीरी में व्यथनद जम्मू और कश्मीर, पाक अधिकृत कश्मीर और पाकिस्तान के खैबर पख्तूनख्वा व पंजाब में बहती है। महाभारत के सभापर्व में इसे बहुत ही पवित्र नदी मानते हुए कहा गया है –

वितस्तां पश्य राजेन्द्र सर्वपापप्रमोचनीम्।
महर्षिभिश्चाध्युतुषितांशीततोययां सुनिर्मलाम्।।

१५. इरावती – इरावती नदी का ही अपभ्रंश है रावी, जिसका उल्लेख पतंजलि महाभाष्य में भी मिलता है। ईरा का अर्थ मदिरा या स्वादिष्ट पेय है। महाभारत के भीष्मपर्व में इसको वितस्ता और अन्य नदियों के साथ '**इरावती वितस्तां च पयोष्णी देवकामपि**' कहकर परिगणित किया गया है। हमारे कुछ ग्रन्थों व बौद्ध साहित्यों में गोरखपुर के पास बहनेवाली राप्ती नदी का भी प्राचीन नाम इरावती मिलता है।

१६. गोदावरी – दक्षिण गंगा गोदावरी नासिक के त्रयम्बक गाँव की पृष्ठवर्ती पहाड़ियों में स्थित एक बड़े जलागार से निकलती है तथा सप्तधारा में विभक्त हो दौलेश्वरम् के पास समुद्र में गिरती है। इसके पावन तट पर त्रयंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग महर्षि अगस्त द्वारा स्थापित है तथा उन्हीं के पुण्य-प्रताप से गंगाजी का द्रविड़ देश में आगमन हुआ। नासिक में इसके तट पर कुम्भ लगता है। पाणिनीय व्याकरण के 'संख्याया नदी-गोदावरीभ्यां च' वार्तिक में 'गोदावरी' नाम आया है तथा पुराणों में इसे निर्झरपूर्ण एवं वाटिकाओं से आच्छादित तटवाली गौतमी कहा गया है।

१७. विपाशा – पंजाब की व्यास नदी का पौराणिक नाम विपाशा है। कहा जाता है कि वशिष्ठ ऋषि पुत्र-शोक से पीड़ित होकर तथा आत्महत्या की इच्छा से अपने हाथ बाँधकर इस नदी में कूद गये थे, किन्तु नदी उनको पाशमुक्त करके वापस किनारे की ओर फेंक दिया था। इसलिये इसका नाम विपाशा अर्थात् पाशमुक्तकारिणी पड़ा तथा ऋग्वेद में इसे विपाशमुवी सुभगा कहा गया है।

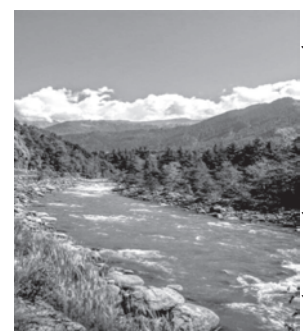
विपाशा

१८. शतद्रु – सतलुज वैदिक 'शुतुद्रि' का रूपान्तर है तथा इसका अर्थ 'शत धाराओंवाली नदी' से किया जा सकता है, जिससे इसकी अनेक उप-नदियों का अस्तित्व इंगित होता है। वास्तव में सतलुज का स्रोत 'रावणह्रद' नामक झील है, जो मानसरोवर के पश्चिम में है। विष्णुपुराण में शतद्रु को

शतद्रु

हिमवान पर्वत से निसृत कहा गया है – **शतद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिर्गताः।**

१९. सिन्धु – सिन्धु नदी तिब्बत से निकल कराची के निकट समुद्र में गिरती है। वैदिक संस्कृति में सिन्धु नदी तथा इसके उद्गम स्थान मानसरोवर का उल्लेख अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जाता था। सिन्धु शब्द से प्राचीन फारसी का हिन्दू शब्द बना है तथा विधर्मियों के लिए सिन्धु नदी को पार करने का अर्थ भारत में प्रवेश करना था। ऋग्वेद में सिन्धु में अन्य नदियों के मिलने की समानता बछड़े से मिलने के लिए आतुर गायों से की गई है – '**अभित्वा सिन्धो शिशुभिन्नमातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः**। सम्भवत: इसकी महानता के कारण ही उत्तर वैदिक काल में समुद्र का नाम भी सिन्धु ही पड़ गया था।

सिन्धु

२०. चर्मण्वती – वर्तमान में इसे चम्बल नदी के नाम से जाना जाता है, जो मध्य प्रदेश में बहती हुई इटावा के निकट यमुना नदी में मिलती है। शास्त्रों में इस नदी के तट पर राजा रन्तिदेव द्वारा 'अतिथि यज्ञ' करने का उल्लेख मिलता है। पाश्चात्य विद्वान पुराणों में इसकी उत्पत्ति बलि पशुओं के चमड़ों के पुँज से बह निकलने का अर्थ लगाकर भ्रमित करते हैं, किन्तु यह सर्वथा अनुचित है। राजा रन्तिदेव की पशुबलि और चर्मराशि का अर्थ कदली स्तम्भों को काटकर उनके फलों से होम एवं अतिथि सत्कार करना है। केलों के पत्तों और छिलकों को भी चर्म कहा जाता था। ऐसे कदलीवन से ही चर्मण्वती नदी निर्गत हुई थी।

२१. कावेरी – यह सह्याद्रि पर्वत की दक्षिणी छोर से निकलकर कर्नाटक और तमिलनाडु से बहती हुई लगभग ८०० किमी मार्ग तय कर कावेरी पट्टनम् के पास बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। इसके तट पर अनेकों प्राचीन तथा गौरवमय तीर्थ जैसे चिदम्बरम्, जम्बुकेश्वरम्, श्रीरंगम्, शिवसमुद्रम्, तंजौर, कुम्भकोणम् तथा त्रिचिरापल्ली स्थित हैं, जिनसे कावेरी की महत्ता और भी बढ़ गई है।

२२. ताम्रपर्णी – केरल राज्य में बहनेवाली इस नदी का स्थानीय नाम परुणै है। महाभारत के वनपर्व में ताम्रपर्णी तथा उसके तट पर स्थित गोकर्ण का वर्णन मिलता है। संस्कृत नाट्यकार कालिदास ने रघुवंशम् में पांड्यवासियों द्वारा विनयपूर्वक रघु को अपने संचित यश के साथ ही ताम्रपर्णी-समुद्र संगम के सुन्दर मोती भेंट करने का वर्णन करते हैं। मल्लिकनाथ ने इसकी टीका में यथार्थ ही लिखा है – **'ताम्रपर्णीसंगमे मौक्तिकोत्परिति प्रसिद्धम्।'**

२३. महानदी – छत्तीसगढ़ तथा ओडिशा अंचल में बहने वाली महानदी का नाम प्राचीनकाल में चित्रोत्पला, **हानन्दा** एवं नीलोत्पला भी मिलता है। छोटी धारा के रूप में जन्मी यह नदी ऐतिहासिक नगरी आरंग और उसके बाद सिरपुर से विकसित होकर शिवरीनारायण में अपने नाम के अनुरूप महानदी बन जाती है। ओड़िशा के कांटिलो में भगवान नीलमाधव का अत्यन्त ही प्राचीन मंदिर व सम्बलपुर में माँ सम्बलेश्वरी के मंदिर इसी के तट पर स्थित हैं।

२४. करतोया – यद नदी पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी में बैकुण्ठपुर के जंगलों से निकल कर बांग्लादेश के राजशाही में प्रवाहित होती है। इतिहास में यह कई बार अपना पथ बदली है और किसी समय अत्यधिक जलराशि को प्रवाहित करनेवाली करतोया अब सूखने के कगार पर है। अमरकोश में भी है – '**करतोया सदानीरा बाहुदा सैतवाहिनी**', जिससे इसके बृहदाकार होने का सन्दर्भ मिलता है। कालान्तर में बंगाल में बौद्ध मतावलम्बियों का आधिक्य होने के कारण उसे तथा उसकी नदियों को अपवित्र माना जाने लगा। करतोया को अपवित्र मानकर इसे कर्मनाशा जैसे दूषित समझा जाता था। आनन्द रामायण के यात्राकाण्ड में है –

कर्मनाशा नदी स्पर्शात् करतोया विलंघनात्।
गंडकी बाहुतरणादधर्मः स्खलति कीर्तनात्।।

२५. बाहुदा – बाहुदा नामक नदी का उल्लेख

महाभारत में आता है, जिसे कई विद्वान कुमाऊँ जिले की रामगंगा नदी को मानते हैं, किन्तु ओड़िशा के गजपति से निकलकर आंध्रप्रदेश में भी बाहुदा नामक एक नदी दृष्टिगोचर होती है।

२६. शोण – वर्तमान सोन नदी अमरकंटक के पास गोंडवाना पर्वत श्रेणी से निकल उत्तर प्रदेश, झारखण्ड होते हुए पटना (बिहार) के निकट गंगा में मिलती है। बाणभट्ट ने हर्षचरित में शोण का उल्लेख कर अपना जन्म-स्थान चिन्हित किया है। शोण नदी से ही शोणभद्र शिला या गणपति शिला प्राप्त होती है।

२७. वेत्रवती – बेतवा नदी पंचमढ़ी (मध्य प्रदेश) के समीप धूपगढ़ नामक पहाड़ी (पारियात्र शैलमाला) से निकलती है तथा मध्यप्रदेश में बहती हुई यमुना में मिल जाती है। प्राचीन काल की प्रसिद्ध नगरी विदिशा तथा ओरछा वेत्रवती के तट पर ही बसे थे। महाकवि केशवदास ने लिखा है –

केशव तुंगारन्य में, नदी बेत्रवती तीर।
नगर ओड़छे बहुबसै, पंडित मंडित भीर।।

बेतवा भारत की सुन्दरतम नदियों में से एक है।

२८. देविका – कुछ लोग कश्मीर के उधमपुर जिले में पहाड़ी सुध (शुद्ध) महादेव मन्दिर से निकलनेवाली देह नदी को मानते हैं, जो पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान में) बहते हुए रावी नदी मे मिल जाती है। दूसरी ओर देविका, गंडकी और चक्रा नदियों के त्रिवेणी संगम पर नेपाल का प्राचीन तीर्थ 'मुक्तिनाथ' बसा हुआ माना जाता है। स्कंदपुराण में कहा गया है कि **प्रभास खंड** यह नदी 'मूल स्थान' (मुल्तान, दक्षिणी पाकिस्तान) के प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर के निकट बहती थी।

२९. भैरवी – झारखंड के रामगढ़ जिले में प्रसिद्ध शक्तिपीठ रजरप्पा स्थित माँ छिन्नमस्ता के मन्दिर के पास भैरवी नदी प्रवाहित होती है। शाक्त तन्त्रों में इस नदी का बहुत महत्त्व है। यहीं पर ऊपर से भैरवी नदी दामोदर नदी में मिलती है, जिसे तन्त्र में 'विपरीतरतातुराम' कहा गया है। यह शिव-शिक्त के विपरीत आलिंगन का क्षेत्र है।

३०. कोका – यह नदी छत्तीसगढ़ राज्य के पत्थलगाँव में प्रवाहित होती है।

३१. गोमती – यह नदी गोमत ताल से निकलकर शाहजहाँपुर, सीतापुर, नैमिषारण्य, लखनऊ, सुल्तानपुर एवं जौनपुर होते हुए वाराणसी में कैथी स्थित मार्कण्डेश्वर महादेव के समीप गंगा में मिलती है। पुराणों के अनुसार गोमती ब्रह्मर्षि वशिष्ठ की पुत्री हैं तथा एकादशी को इस नदी में स्नान करने से सम्पूर्ण पाप धुल जाते हैं। रावण-वध के पश्चात् 'ब्रह्महत्या' के पाप से मुक्ति पाने के लिए भगवान श्रीराम ने महर्षि वशिष्ठ के आदेशानुसार इस आदि-गंगा गोमती नदी में स्नान किया एवं अपने धनुष को भी धोया था। उस स्थान को धोपाप तीर्थ कहते हैं, जहाँ दशहरा स्नान से समस्त पाप धुल जाते हैं –

ग्रहणे काशी मकरे प्रयाग।
चैत्र नवमी अयोध्या दशहरा धोपाप।।

३२. उत्पलावती – हरिवंश पुराण में इसको उत्पल भी कहा गया है। उत्पलावती नदी का नाम वामन पुराण में भी है, जो कावेरी की सहायक नदी है और मलय-पर्वत से निकलती है।

३३. आत्रेयी – यह नदी पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश के उत्तरी भागों में बहती है। आत्रेयी का उल्लेख महाभारत में मिलता है, जो पूर्व में उत्तर बंगाल की सबसे बड़ी नदियों में से एक थी। यह मुख्य धारा थी, इसके द्वारा तीस्ता का पानी गंगा में मिलता था। सन् १७८७ में तीस्ता अपने प्राचीन मार्ग से अलग हो गई और अपने लिए एक नया विशाल मार्ग बनाते हुए ब्रह्मपुत्र में मिलने लगी। तब से आत्रेयी ने अपना महत्त्व खो दिया है और अब इसके महान अतीत के कुछ निशान ही अवशेष हैं।

३४. भारती – यह विलुप्त सरस्वती नदी की बायीं ओर से मिलनेवाली प्रमुख सहायक नदी थी, जो अब लुप्त है।

३५. गंगा, ३६. यमुना, ३७. सरस्वती – इन तीनों पवित्र नदियों के बारे में सभी जानते हैं।

३८. सरयू – श्रीराम-जन्मभूमि, अयोध्या में प्रवाहित होनेवाली इस नदी का उद्भव हिमालय से निकलनेवाली घाघरा और शारदा नदी के मिलन से होता है। यह बलिया और छपरा के मध्य में गंगा से मिल जाती है। रामचरितमानस में इसका उल्लेख प्रसिद्ध है –

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि।
उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।। ७/३/५

३९. गण्डकी – मध्य नेपाल, उत्तर प्रदेश व बिहार में बहनेवाली यह नदी 'नारायणी नदी' भी कहलाती है, जो पटना के पास गंगा में हरिहर क्षेत्र में मिलती है। अत्यन्त पवित्र इस नदी से ही शालिग्राम (नारायण) शिला प्राप्त होती है।

गण्डकी

४०. श्वेत गंगा – छत्तीसगढ़ के महासमुन्द से १० किमी. पश्चिम में बम्हनी गाँव स्थित है, जहाँ नदी में निरन्तर प्रवाहित होनेवाला कुण्ड श्वेत गंगा प्रसिद्ध है। इस कुण्ड के समीप भगवान शिव का एक प्राचीन मन्दिर स्थापित है।

४१. कौशिकी – नेपाल से निकलकर बिहार के मिथिलांचल में बहनेवाली कोसी नदी को कौशिकी नाम से उद्धृत किया गया है। कहा जाता है कि विश्वामित्र ने इसी के किनारे ऋषि की उपाधि पायी थी। वे कुशिक ऋषि के शिष्य थे और उन्हें ऋग्वेद में कौशिक भी कहा गया है। बिहार में प्रलय सदृश बाढ़ लाने कारण इसे माँ काली का रूप भी कहते हैं तथा कौशिकी उनका ही दूसरा नाम है।

४२. भोगवती व ४३. मंदाकिनी – शिव की जटा से मुक्त हो देवी गंगा तीन धाराओं में विभक्त हुईं, जो क्रमशः स्वर्ग में मन्दाकिनी नाम से, मर्त्यलोक में भागीरथी के नाम से तथा पाताल में भोगवती के नाम से प्रवाहित होने लगीं। प्रयाग में वासुकि नाग का तीर्थ है, जो गंगा में है, इसमें स्नान करने से अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है, यथा –

तत्र भोगवती नाम वासुतकेस तीर्थम् उत्तमम्।

नागों को 'पातालतलवासिनः' कहा गया है। इस वासुकितीर्थ में स्नान करने से भोगवती में स्नान का पुण्य प्राप्त होता। मन्दाकिनी नामक एक धारा रूद्रप्रयाग में अलकनन्दा से मिलती है, किन्तु यह वह मंदाकिनी नहीं, जिसकी चर्चा महास्नान में 'स्वर्गे मंदाकिनी' तथा

मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम्।
स्वर्गस्रोतस्तु वैष्णव्यं स्नानं भवतु तेन ते।।

कहकर की गई है। तुलसीदास ने मंदाकिनी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध पौराणिक कथा का भी निर्देश किया है, जिसमें स्वर्ग की इस नदी को अत्रि ऋषि की पत्नी महासती अनसूया द्वारा बीभत्स अनावृष्टि के समय चित्रकूट में लाए जाने का

वर्णन है –

नदी पुनीत पुरान बखानी।
अत्रिप्रिया निज तप बल आनी।।

इसी के तट पर वनवास में श्रीराम ने अपने पिता दशरथ का श्राद्ध किया था।

उपरोक्त भृङ्गारस्नान के बाद महास्नान में सहस्त्रधारा स्नान के पश्चात् नद जल से स्नान का विवरण मिलता है –

ये नदाः लोहिताद्याश्च नदा ये शोन-घर्घरा :।
... सिन्धु-भैरव शोनाद्या ये नदाः भुवि संस्थिताः।।
सर्वे सुमनसो भूत्वा शृङ्गारैः स्नापयन्तु ते।।

सिन्धु व शोण नदी की चर्चा आगे हम कर चुके हैं। बाकी नदों की चर्चा संक्षिप्त रूप से यहाँ करेंगे। लोहित या लौहित्य ब्रह्मपुत्र नदी का ही पौराणिक नाम है तथा इसी नाम से असम में आज भी प्रसिद्ध है। घर्घरा का आधुनिक नाम घाघरा है, जो नेपाल में कर्णाली नदी के नाम से विख्यात है। घाघरा नदी शारदा नदी के साथ मिलकर **सरयू जी** बनती है। **भैरव नद** सुन्दरवन डेल्टा में गंगा नदी के मुहाने पर बना एक **ज्वारीय नद** है। इस प्रकार महास्नान में भारतवर्ष की अनेकों पुण्यसलिला नदियों के जल से महामाया दुर्गा का विस्तृत अभिषेक होता है।

पुण्यभूमि भारत को ये सुजला-सुफला नदियाँ ही शस्यश्यामला बनातीं है। ये नदियाँ ही हैं, जिनके तट पर कुम्भादि पर्व मनाये जाते हैं। सभी तीर्थों की भी उत्पत्ति इन्हीं के तट पर हुई है। इन नदियों का जल अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इनमें स्नान कर जनता संताप से मुक्त होती है, जीव-जगत इन्हें पान कर तृप्त होते तथा देवताओं पर अर्पण करने से मोक्षकपाट खुलते हैं। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (२७)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

यदाऽहमुपवेक्ष्यामि ध्याने भगवतस्तदा।

भवतु मे सदा लक्ष्यमेवंविधं तु तद्गतम्।।६।।

– जब मैं भगवान के ध्यान में बैठूँगा, तब उन पर ऐसा ही लक्ष्य रहे।

वड़िशयति तर्क्येक एकदा मत्स्यवेधकः।

भ्रातः प्राहावधूतस्तं पन्थाः स्थानमदस्त कः।।७।।

– एक मछुवारा मछली पकड़ रहा है। अवधूत आकर उससे पूछा – भाई ! अमुक स्थान पर किस मार्ग से जाऊँगा?

आहरन्ति तदा मीना आमिषं मत्स्यवेधने।

स आस्त एकदृष्टिः सन् निरुत्तरः प्लवं प्रति।। ८।।

– उस मछुवारे की वंशी में मछली चारा खा रही है। उसकी बात का कोई उत्तर ने देकर वह एकाग्र होकर वंशी की तिरेंदा की ओर देखता रहा।

विद्धं ततस्तदा मीनं स तस्य वड़िशेन तु।

पृष्ठतः परिवृत्याह किमपि भाषते भवान्।।९।।

– वंशी में मछली फँसाने के बाद उसने पीछे मुड़कर पूछा – ''क्या आप कुछ पूछ रहे थे?''

नत्वा तमवधूतस्तु कृताञ्जलिरभाषत।

नमस्तुभ्यं गुरुर्मे त्वमद्यतो मत्सवेधक।।१०।।

– अवधूत ने प्रणामकर कहा – 'आज से तुम मेरे गुरु हो।''

यदाहं ध्यातुमासिष्ये त्वमिवेष्टं तदा मम।

नैवं समाप्य भूयासं नाऽहमन्यमना कदा।।११।।

– मैं जब अपने इष्ट का ध्यान करने बैठूँगा, तब तुम्हारे जैसा कार्य समाप्त न कर, कभी भी दूसरे कार्य में मन न लगाऊँ। **(क्रमशः)**

कविता

वे माने जाते सन्त

बाबूलाल परमार

काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह का, जिसने कर दिया अन्त,
विषय-वासना ग्रस्त मन को, जिसने किया विध्वंस ।
एक ही इष्ट में देखा जिसने, सुर-नर-मुनि-भगवन्त,
सरल स्वभाव सहज साधना, वे माने जाते संत।।
सृष्टि को समदृष्टि से प्रेम करें, उनको समझो सन्त,
तन-मन-धन से यथायोग्य सेवा करें, वे होते हैं संत ।
सत्य-अहिंसा-दया-धर्म का पालन करें, वे होते हैं संत ।
पर-पीड़ा हरें, परहित करें, 'बाबूलाल' वे माने जाते संत।

जिसके मन में सद्भाव की, उठ रही हिलोर,
निःस्वार्थ प्रेम और परमार्थ की थाम रखी है डोर ।
भगवत् भजन में प्रतिक्षण अपने आप को रखा जोड़,
बाबूलाल वे सन्त-महन्त हैं, जिनकी न किसी से होड़।।
संत वे होते हैं जो कि नर से नारायण बने।
गृहस्थ हो या संन्यासी, सबका तारायण बने।
स्वाध्याय करें सद्ग्रन्थों का, सच्चा पारायण बने।
सर्वधर्म सद्भाव 'बाबूलाल' गीता-रामायण बने।

रामराज्य का स्वरूप (९/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

उठि कर जोरि रजायसु मागा।
मनहुँ बीर रस सोवत जागा।।
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा।
साजि सरासनु सायकु हाथा।।
आजु राम सेवक जसु लेऊँ।
भरतहि समर सिखावन देऊँ।। २/२२९/१-३
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू।
लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।।
तैसेहिं भरतहि सेन समेता।
सानुज निदरि निपातऊँ खेता।। २/२२९/६-७

इतना उग्र भाषण लक्ष्मणजी का हुआ। प्रभु चुपचाप सुन रहे हैं। क्योंकि लक्ष्मणजी ने पहले ही रोक लगा दी है। लेकिन अवसर मिल गया। आकाश में देवताओं को चिन्ता हो गई कि हम तो चाहते थे कि राम-रावण का युद्ध हो, पर कहीं लक्ष्मण-भरत का युद्ध न हो जाये। इसलिए आकाश में उन्होंने लक्ष्मणजी की प्रशंसा करते हुए कहा –

तात प्रताप प्रभाऊ तुम्हारा।
को कहि सकइ को जाननिहारा।।
अनुचित उचित काजु किछु होऊ।
समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ।।
सहसा करि पाछें पछिताहीं।
कहहिं बेद बुध ते बुध नाही।। २/२३०/२-४

आपका प्रताप और प्रभाव कौन नहीं जानता ! लेकिन उचित का विचार करके कार्य करना चाहिए। तब?

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। २/२३०/५

एक वाक्य देवताओं का लक्ष्मण के कान में पड़ा, वे चुप हो गये। भरत के सम्बन्ध में बोलना बंद कर दिया। प्रभु ने अब मुस्कराकर देखा। बोले – भाषण बीच में कैसे रुक गया? बोल क्यों नहीं रहे हो? मैं कह रहा था, तब तो तुम सुनने को तैयार नहीं थे। देवताओं में क्या तुम्हारी इतनी आस्था है कि देवताओं ने कहा और तुम्हें भरत पर भरोसा हो गया? बोले, नहीं महाराज, आपमें और देवताओं में जो अन्तर है, उसे मैं जानता हूँ। आप हैं भोले-भाले, इसलिए आपको अच्छे-बुरे की परख नहीं है। पर देवता तो पक्के स्वार्थी हैं, ये तो खोटे-खरे की अच्छी परख रखते हैं। इसलिए ये जब कह रहे हैं, तो भरत अच्छे ही होंगे। मैं इसका यही अर्थ ले रहा हूँ। लक्ष्मणजी जैसे भक्त को भी भगवान की बात पर भरोसा नहीं है। इतना चारों ओर प्रभु के शील और स्वभाव का समाचार फैला हुआ है। यही बात हनुमानजी के मन में आता है कि प्रभु भरतजी की इतनी प्रशंसा करते हैं और भरत न तो कभी समाचार लेने आते हैं, न कभी मिलने आते हैं।

भरतजी के जितने कार्य थे, वे बड़ा संदेह उत्पन्न करते थे। हर कार्य में आप देखेंगे। चाहे वह बाल्यावस्था में खेल का वर्णन हो या अन्यत्र। खेल में भी भगवान राम के विरोध में खेलने के लिए प्रस्तुत हैं। खेल में भगवान राम जब हारने के बाद प्रसन्न हुए, तो भरतजी भी जीतने के बाद बड़े प्रसन्न हो गये। अगर कोई भरत से यह पूछ दे कि आप जीतने पर इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हैं? तो भरतजी तो यही कहते हैं कि मैं जीता थोड़े ही हूँ, मैं तो जीताया गया हूँ। अब जीतानेवाला महान है कि जीतनेवाला महान है? श्रीभरतजी

का यही भाव सर्वत्र है। चित्रकूट से लौटकर आए, तो कभी ऐसा प्रसंग ही नहीं आया कि इतने दिनों तक भगवान राम वन में रहे हों और कभी एक दिन भी भरतजी मिलने गये हों। कभी किसी दूत को भेजा हो, किसी मंत्री को भेजा हो। उसकी पराकाष्ठा तो तब हो गई, जब लंका के रणांगण में लक्ष्मणजी की आसन्न मृत्यु की अवस्था का समाचार सुनकर भी युद्ध करने के लिए सेना लेकर भरतजी नहीं गये। इन घटनाओं का परिणाम यह होता था कि उस युग के बड़े से बड़े व्यक्ति को भी भरतजी के प्रति सन्देह हो जाता था।

जैसे समुद्र के अन्तस्तल में क्या छिपा है, इसे देख पाना असम्भव है। इतने रत्न थे, पर बिना मन्थन के वे रत्न प्रकट नहीं हुए। इसी प्रकार से एक संकेत आपको और बता दें कि ननिहाल में भरतजी दो-चार दिन थोड़े ही रहे। दो चार दिन की कल्पना न कीजिएगा। जब भगवान श्रीराम का विवाह हुआ, तो विवाह के समय भरत के मामा विद्याजित विवाह में सम्मिलित होने के लिये आए थे और विवाह के पश्चात् वे भरत को लेकर कैकय देश, अपने राज्य में चले गये। इतने वर्षों तक भरत ननिहाल में रह गये। भगवान राम से दूर रहे। भगवान राम के पास पहुँचने की व्यग्रता भरत में नहीं दिखाई देती। भरत के व्यक्तित्व के ये सभी विचित्र पक्ष हैं, अद्‌भुत पक्ष हैं !

वस्तुत: श्रीभरत स्वभाव से ही बड़े संकोची हैं। अत्यन्त संकोच के कारण वे भगवान श्रीराम के पास रहते हैं। श्रीभरत ने एक बात कही न ! उन्होंने कहा – महाराज आपके सौन्दर्य की मैंने बड़ी प्रशंसा सुनी है। तो प्रभु ने मुस्कुरा करके देखते हुये कहा – सुनी है, देखी नहीं है क्या? उन्होंने कहा – नहीं महाराज, लोगों ने सुना भी है और देखा भी है, पर मैंने तो सुना ही सुना है। यह अनोखी बात है। श्रीभरत ने भगवान श्रीराम को नहीं देखा। क्यों नहीं देखा? भरतजी का एक वाक्य मिलेगा आपको। वह तो एक अवसर मिला कि यह बात प्रकट कर दी भरतजी ने, नहीं तो भरत तो इतने संकोची स्वभाव के हैं कि उन्होंने कहा –

महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन।।
२/२६०/०

महाराज, सारे संसार के भक्त आपके दर्शन करके तृप्त हो रहे हैं, पर भरत ने कभी आपके सामने मुँह नहीं खोला, आपकी ओर दृष्टि उठाकर नहीं देखा, ऐसी स्थिति में मैं तो प्यासा का प्यासा ही रह गया। प्रभु ने मुस्कुरा कर कहा, भरत तुम जैसे प्यासे ही अच्छे हैं। जो दूसरों के प्यास बुझाते हुए भी स्वयं प्यासे अतृप्त रहते हैं। तुम्हारे लिये तो तृप्ति की आकांक्षा ही नहीं है। उस सामीप्य को, जो आकांक्षा भरत में नहीं है, उसके पीछे उनका भाव यही है कि दूरी में समीप आ जाते हैं, सामीप्य में दूर हो जाते हैं। इस तरह से भरत का व्यक्तित्व इतने अन्तराल में खो गया।

अब कैकेयीजी के लिए भी आप कल्पना कीजिए कि उन्हें यह समाचार जानने की इच्छा नहीं हो रही है कि मेरा पुत्र भरत ननिहाल में कैसा है। अयोध्या पुरवासी भी भूल गये। सब लोगों के मानसपटल से श्रीभरत ओझल हो गये। भगवान श्रीराम को यह लगा कि पिताजी रामराज्य की स्थापना तो करना चाहते हैं, पर रामराज्य का अर्थ केवल मेरे सिंहासन पर बैठ जाना नहीं है। इसके लिए भूल क्या की जा रही है? महाराज दशरथ रामराज्य के लिए इतने उतावले हो गये ! किन्तु व्यावहारिक अर्थों में भी और पारमार्थिक अर्थों में भी रामराज्य क्यों नहीं बना? अगर रामराज्य के सन्दर्भ में भरत को निमन्त्रण देकर पहले ही बुला लिया गया होता, तो यह जितना अनर्थ हुआ, वह रुक सकता था। इसका अभिप्राय यह हुआ कि एक भरत का अभाव ही रामराज्य न बन पाने का कारण बना। आध्यात्मिक अर्थों में सब कुछ होते हुए भी भगवान के होते हुए भी जब तक भगवत् प्रेम नहीं होगा, तब तक आपके रामराज्य का संकल्प अधूरा रहेगा। भगवान श्रीराघवेन्द्र और भरत दोनों में होड़ है। भगवान में और प्रेम में छिपने की होड़ है। भगवान कभी प्रकट नहीं होते और प्रेम भी प्रकट नहीं होता। पर भक्तों ने भगवान को प्रकट कर दिया। बालकाण्ड में भगवान राम अयोध्या में प्रकट हो गये। भगवान के प्रकट हो जाने के बाद भरत ने भी जन्म ले लिया, पर भरत का प्रेम प्रकट नहीं हुआ। भगवान प्रकट कैसे होते हैं, आप थोड़ी एकाग्रता से इस सूत्र को समझेंगे। रामचरितमानस में कहा गया –

अग जगमय सब रहित बिरागी।
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।। १/१८४/७

भगवान प्रेम के द्वारा प्रगट होते हैं।

प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।। १/१८४/५

भक्तों ने प्रेम किया और प्रेम से द्रवित होकर भगवान प्रगट हो गये। पर भगवान को प्रकट करने के बाद स्वयं प्रेमरूप भरत छिप गये, तो भगवान राम ने कहा, वाह, मुझे प्रकट कर दिया और स्वयं छिपे रहोगे? हम तुम्हें प्रकट किए बिना नहीं मानेंगे। इसलिए भगवान ने इस समुद्र को मथने के लिये चौदह वर्ष के वनवास की जो मथानी बनाई, इसका अभिप्राय यह था कि भरत, मैं तुम्हें इतना कष्ट पहुँचाऊँगा कि तुम्हारा छिपा प्रेम प्रकट हो जायेगा। इसलिए जो कुछ योजना थी, वह राम की बनाई हुई थी। इसका अभिप्राय क्या है? भगवान राम तो और भी किसी बहाने वन जा सकते थे, पर नहीं। वे भरत को ही निमित्त बनाकर गये। भरत को राज्य मिले, इसीलिए वन गये। इतनी चोट दी। जब आप दही को मथेंगे, तो दही को चोट लगेगी कि नहीं? आप निर्णय कर लें कि आप मथानी के द्वारा दही का या दूध का स्पर्श करेंगे और मन्थन नहीं करेंगे, तो नवनीत नहीं निकलेगा। वस्तुत: भगवान श्रीराम को लगा कि जब तक भरत का व्यक्तित्व, चरित्र समाज के सामने प्रकट नहीं होता, साधकों के सामने प्रकट नहीं होता, जब तक उनके पवित्र आचरण और प्रेम के अमृत को या अन्य सद्गुणों के रत्नों को समाज में साधक पा नहीं लेते, तब तक रामराज्य की स्थापना नहीं होगी। इसलिए भगवान राम ने चौदह वर्ष की एक योजना बनाई। चौदह वर्ष की उस योजना का उद्देश्य क्या था?

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर।।
२/२३८/०

राम हैं कृपासिंधु और भरत हैं प्रेमसिंधु। दोनों अद्भुत हैं! पर भगवान ने कहा कि कृपासिंधु होकर भी मैं कुछ नहीं कर पा रहा हूँ, प्रेमसिंधुजी आप कृपा कीजिए ! सचमुच भगवान इतने कृपासिंधु हैं, पर क्या कुछ कर पा रहे हैं? भगवान कहते हैं कि जब तक अन्त:करण में कृपा की अनुभूति करने के लिये प्रेमसिन्धु का, प्रेम का उदय नहीं होगा, तब तक सच्चे अर्थों में रामराज्य की स्थापना नहीं होगी। **बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय ! (क्रमश:)**

पहले शरीर को साधो

देह को कुछ सीमा तक साधने के लिए कुछ साधना की जानी चाहिए। उसके बाद इन्द्रियों एवं मन को भी प्रशिक्षित करना चाहिए। यही नहीं, अहंकार को भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

देह को कैसे साधोगे? भोजन के विषय में सावधानी बरतो। अत्यधिक मत खाओ और ऐसा भोजन चुनो, जो तुम्हारे लिए अनुकूल हो तथा देह की समरसता में सहायक हो। कुछ लोग समझते हैं कि खाना पेट का सबसे अच्छा व्यायाम है। यही नहीं, पौष्टिक आहार के साथ ही तुम्हें देह के सभी अंगों का, विशेषकर पेट का कुछ व्यायाम करना चाहिए, जिससे तुम्हारी पाचन-क्रिया, आत्मसात्-करण तथा मलोत्सर्ग क्रिया अधिक से अधिक अच्छी तरह हो सके। ये प्राथमिक नियम हैं, जिनका पालन करना चाहिए। हमारे पुरातन आचार्यों का कथन हैं : ''शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'', अर्थात् शरीर धर्म का एक साधन है। उसका ध्यान रखना पहला कर्तव्य है। कभी-कभी दुबले लोग मेरे पास आकर कहते हैं, ''मैं शरीर को भूलना चाहता हूँ।'' उनका शरीर कैसा है? केवल हाड़-मांस का एक समूह। पहले देह को सबल बनाओ। यदि देह स्वस्थ न हो, तो तुम उसे कभी भूल नहीं सकते।

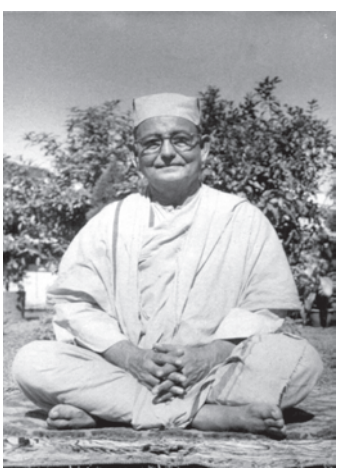

— स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज
(ध्यान और आध्यात्मिक जीवन, पृष्ठ २६९-२७०)

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/२)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

श्रीभगवान उवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।२।।

श्रीभगवान उवाच (श्रीभगवान बोले) – मयि मनः आवेश्य (मुझमें मन को एकाग्र करके) नित्ययुक्ताः ये परया श्रद्धया उपेताः (नित्ययुक्त हो जो भक्तजन श्रेष्ठ श्रद्धा से) माम् उपासते (मुझको भजते हैं) ते मे युक्ततमाः मताः (उन्हें मैं सर्वोतम मानता हूँ)।

''मुझमें मन को एकाग्र करके नित्ययुक्त हो जो भक्तजन श्रेष्ठ श्रद्धा से मुझको भजते हैं, उन्हें मैं सर्वोत्तम मानता हूँ।''

दूसरे श्लोक में भगवान इस प्रश्न का सीधा उत्तर न देते हुए यह बताते हैं कि कौन उनके साथ सबसे अधिक युक्त हैं। भगवान की बनाई हुई यह बात दोनों तरह के भक्तों पर घटाई जा सकती है, पर इसका संकेत अधिकतर है सगुणोपासक भक्त की ओर। तीसरे और चौथे श्लोक में भगवान निर्गुणोपासक भक्त की चर्चा करते हैं। भगवान कहते हैं – मुझमें अपने मन का प्रवेश कराकर निरन्तर मेरे भजन में लगे हुए जो भक्तजन परम श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे लोग मेरे मत में युक्ततम हैं। भगवान को तो सभी भक्त समानरूप से प्रिय हैं। किसी एक को श्रेष्ठतर बताना उनके लिए कठिन है। भक्त चार प्रकार के कहे गए हैं – १. आर्त २. जिज्ञासु ३. अर्थार्थी और ४. ज्ञानी। इन चारों में से जब ज्ञानी को भगवान ने अपना आत्मा ही बता दिया, तो सबसे प्यारा तो वही हो गया। अब यदि अर्जुन भिन्न-भिन्न प्रकार से उनके समक्ष अपना प्रश्न रखता चले, तो वे उसका सीधे-सीधे क्या उत्तर दें? इसीलिए उन्होंने युक्ततम भक्त के गुण गिना दिए। अब हम देखें मय्यावेश्य कहने में मयि से उनका क्या तात्पर्य है?

ग्यारहवें अध्याय में भगवान के तीन रूप प्रकट हुए। पहला है विश्वरूप। उसे देखने के लिए भगवान ने अर्जुन को दिव्यचक्षु प्रदान किया। वह रूप देखकर अर्जुन घबरा गया और भगवान से अपने चतुर्भुजरूप को दिखाने की प्रार्थना की। वह भगवान का दूसरा रूप हुआ। तीसरा रूप वह हुआ, जब भगवान सामान्य होकर अपने-आपको द्विभुजरूप में दर्शाते हैं। **मयि** से तात्पर्य यहाँ विश्वरूप तो हो ही नहीं सकता, जिसे देखकर अर्जुन ही घबरा गया था। या तो चतुर्भुज नारायण का रूप हो सकता है, जिसे भक्त अपने हृत्कमल पर खड़े समझकर धन्य होता रहे या फिर जिस रूप में कन्हैया बने भगवान वंशी बजाया करते थे, गायें चराते थे, पीताम्बर पहनते थे और गोप-गोपियों के साथ क्रीड़ारत रहते थे। उस सामान्य द्विभुज व अत्यन्त मनमोहक रूप के लिए उन्होंने **मयि** कहा हो। इन दोनों ही रूपों में भक्त अपने मन को लगा सकता है। मन के आविष्ट होने का अर्थ है हर समय उस व्यक्ति की उपस्थिति का आभास होना। जैसे खेल में लगे बच्चे का मन सदा अपनी माँ में आविष्ट रहता है। उसी तरह भगवान का कहना है कि जो भक्त अपने मन को मुझमें आविष्ट कर देता है, वह निरन्तर मुझसे ही जुड़ा रहता है। संसार में ऐसे बहुत-से प्रलोभन आते हैं, जिनके कारण मन भगवान की

ओर से हट जाता है, इसलिए हमें सावधानी रखनी चाहिए कि ऐसा न हो। नित्ययुक्त का अर्थ है सदा-सर्वदा भगवान के चरणों के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखना। जैसे-जैसे भगवान के साथ हमारा मन जुड़ता जाएगा, उनके साथ हमारा सम्बन्ध घनिष्ठ होता जाएगा, हम उस छोटे बच्चे की तरह हो जाएँगे, जो माँ में अपना मन आविष्ट करके रखता है और जिसका प्रेम माँ के प्रति इतना अधिक होता है कि माँ के अलावा किसी और को जानता ही नहीं। हम भी जब भगवान को छोड़कर किसी और को नहीं जानेंगे, तब कहलाएँगे नित्ययुक्त। नित्ययुक्त होने के लिए भक्त को अपनी ओर से किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता। माँ को बहुत अधिक अपना मानने के कारण जैसे बच्चे का मन हमेशा माँ में लगा रहता है, इसी प्रकार जब हम भगवान को नित्य नितान्त अपना मानेंगे, तो अपने आप हम नित्ययुक्त हो जाएँगे। यही भगवान का तात्पर्य है।

श्रद्धया परयोपेताः – अत्यन्त श्रद्धा से युक्त होकर तुम लगे रहो। इसका अर्थ यह है कि भगवान कभी मुझे छोड़ते नहीं, यह भाव। भगवान कभी मेरा त्याग नहीं करते, यह भाव। संसार का कोई भी प्रिय से प्रिय सम्बन्धी, यहाँ तक कि मेरा अपना यह शरीर भी मुझे छोड़कर जा सकता है, पर भगवान मुझे कभी नहीं छोड़ेंगे। ऐसा भाव जब हमारे मन में आएगा, तब हम कहलाएँगे नित्ययुक्त। यही परम श्रद्धा है, जिससे जीवन में शुभ और अशुभ कुछ भी आए, पर सबमें भगवान का मंगलमय हाथ ही दिखाई देता है। यह एक आदर्श भगवान हमारे समक्ष रखते हैं।

भक्त और ज्ञानी का अन्तर समझाते हुए भगवान राम का एक उद्धरण है –

मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी।
बालक सुत सम दास अमानी।
निज बल तिनहिं मोर बल ताहिं।
द्विज कहँ काम क्रोध रिपु आहिं।।

'अर्थात् काम और क्रोध दोनों रिपु तो भक्त और ज्ञानी दोनों के लिए हैं परन्तु ज्ञानी मेरे लिए प्रौढ़ तनय के समान हैं और भक्त छोटे अबोध बेटे के समान हीन और निरीह है। ज्ञानी अपने स्वयं के बल से पार लग जाते हैं और भक्त के लिए तो मेरा ही बल है।' अर्थात् निर्गुण उपासक स्वयं ही पार होने में सक्षम हैं और अपनी ही शक्ति से स्वयं पार होता भी है, पर सगुण उपासक अपने आप संसार सागर से पार जाने में स्वयं को असमर्थ पाता है। अत: उसके लिये भगवान को ही नौका लानी पड़ती है और उसमें बैठाकार उसे पार पहुँचाना भी पड़ता है। निर्गुण उपासक में भक्ति वत्सलता का तो भाव रहता ही नहीं है, पर जहाँ प्रेम होता है, जो सगुणोपासक में रहता ही है, उस प्रेम के अधीन हो जाते हैं भगवान। निर्गुणोपासना में उपासक को ज्ञान प्राप्त होता है। भगवान के साथ अपनी अभेदता का दर्शन भी होता है। वह ब्रह्म के साथ तद्रूप हो जाता है। तो क्या सगुणोपासक ब्रह्म के साथ होनेवाले इस ऐक्य से वंचित रहता है? ऐसी बात नहीं है। ग्यारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया था कि उनका जो चतुर्भुज नारायण रूप अर्जुन ने देखा, उसे देख सकना अनन्य भक्ति के अलावा किसी भी अन्य साधन के द्वारा शक्य, सम्भव नहीं है। भगवान कहते हैं – अनन्य भक्ति के द्वारा मेरा भक्त मुझे जान लेता है, देख भी लेता है और मेरे भीतर प्रविष्ट भी हो जाता है, मुझसे एकाकार हो जाता है। ज्ञानी उपासक को ज्ञान भी मिल जाता है और वह तत्त्व के साथ तद्रूप भी हो जाता है, पर ये दोनों बातें तो भक्त के साथ भी होती हैं और इनके अलावा एक विशिष्ट फल भक्त को यह मिल जाता है कि उसे इसके लिए स्वयं परिश्रम नहीं करना पड़ता। **(क्रमशः)**

कविता

दुर्गा माँ का ध्यान करूँगा

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

दुर्गा माँ का ध्यान करूँगा, माँ इस जग की है आधार ।
सिंहवाहिनी दुर्गा माता, देती जग को शक्ति अपार ।।
ज्ञान भक्ति वैराग्य बढ़ाती, हरती जीवन का अँधियार ।
असुर विनाशिनि दुष्टविदारिणि, भक्तों का करती उपकार।।
जो माँ तुमको सदा हि ध्याता, उसका तुम करती उद्धार ।
जरामरण से उसे मुक्त कर, भवसागर से करती पार ।।
त्रिगुणधरा माँ परात्परा तुम, कर दो मुझ पर कृपा अपार।
अपने चरणों में गति दे दो, तुमसे मेरी यही गुहार ।।

रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि

स्वामी पररूपानन्द, जयरामवाटी

(गतांक से आगे)

रामकृष्ण मठ का चतुर्थ पर्व – १३ फरवरी, १८९८ से २ जनवरी, १८९९ तक मठ गंगा के पश्चिमी तट पर नीलाम्बर मुखोपाध्याय के उद्यानभवन से संचालित हुआ था। (श्री नीलाम्बर मुखोपाध्याय कलकत्ता के निवासी थे। १८६७ ई. में कश्मीर व जम्मू के प्रधान न्यायाधीश बने, तत्पश्चात् राजस्व सचिव और अन्त में प्रधानमंत्री भी बने थे। वे बीस वर्ष कर्मरत रहकर कलकत्ता लौट आये थे। १८९६ ई. में कलकत्ता पुरसभा के उपाध्यक्ष पद पर अठारह वर्ष प्रतिष्ठित रहे) बेलूड़ ग्राम में भूखण्ड क्रय करने का निर्णय लेने पर निकटस्थ इस उद्यानभवन को ८५ रुपये प्रति माह किराये पर लिया गया, जिससे कि मठ में निर्माण-कार्य आदि करना सहज हो सके। इस भूखण्ड को क्रय करने हेतु आवश्यक ३९००० रुपये हेनरियेटा मूलर देने के लिये मान गयी थीं। दो छोटे मकान सहित २२ बीघा भूखण्ड पटना निवासी भागवत नारायण सिंह से ४ मार्च, १८९६ को क्रय किया गया था।

१३ फरवरी, १८९८ ई. को आलमबाजार से मठ नीलाम्बर-उद्यानभवन में स्थानान्तरित हुआ था। यहाँ के खुले वातावरण को देखकर स्वामीजी ने भगिनी क्रिस्टीन को ११ मार्च, १८९८ ई. को पत्र लिखकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की थी। श्रीमाँ का इस भवन में पहले कई बार आना हुआ था। १८८८ ई. में स्वामी प्रेमानन्द की माता मातंगिनी देवी और भगिनी कृष्णभाविनी ने श्रीमाँ के पास कामारपुकुर जाकर श्रीमाँ को अत्यन्त कष्ट में जीवन यापन करते देखा, तो कलकत्ता आकर ठाकुर के भक्तों को यह सूचना दी। तदनुसार श्रीमाँ को कामारपुकुर से लाकर इस उद्यानभवन में रखा गया था। उस समय श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के लेखक की सहधर्मिणी श्रीमती निकुंजदेवी ने श्रीमाँ के चरणों की पूजा की थी। श्रीमाँ ने उन्हें ३० अक्तूबर, १८८८ को मन्त्र-दीक्षा दी थी। इसी समय 'श्रीम' ने वचनामृत के प्रारम्भिक अंश को श्रीमाँ को पढ़कर सुनाया था एवं माँ का अनुमोदन व आशीर्वाद प्राप्त किया था। इन्हीं दिनों स्वामी अभेदानन्द ने स्वरचित विख्यात स्तोत्र 'प्रकृतिं परमां अभयां वरदां ...' श्रीमाँ को पढ़कर सुनाया था। श्रीमाँ ने प्रसन्न होकर उन्हें कहा था, 'तुम्हारे कण्ठ में सरस्वती विराज करेंगी'। १८९३ ई. में श्रीमाँ ने इस मकान में कुछ महीने निवास किया था। श्रीमाँ को यह स्थान शान्त होने के कारण विशेष प्रिय था, उनका मन उच्च ध्यानावस्था में रहता था। यहाँ माँ को कई बार अलौकिक दर्शन हुए थे।

द्वितीय बार यहाँ निवास करते समय श्रीमाँ ने 'पंचतपा' यज्ञ किया था। भक्त-प्रवर गिरीशचन्द्र घोष यहाँ माँ के दैनन्दिन व्यय का भार वहन करते थे। १८९३ ई. में आषाढ़ माह से जगद्धात्री पूजा के पूर्व तक, १८९४ ई. में दुर्गा पूजा के पूर्व तक लगभग तीन माह के लिये, १८९८ ई. में तीन दिन के लिये तथा १९०१ में बेलूड़ मठ की प्रथम दुर्गा पूजा में उपस्थित रहने के लिये श्रीमाँ ने इस उद्यानभवन में वास किया था। २८ मार्च, १८९८ ई. को मठवासियों के सादर आमन्त्रण पर श्रीमाँ ने यहाँ आकर ठाकुर की पूजा की तथा भोग निवेदन के पश्चात् शयन दिया था। उसी दिन शाम को स्वामी ब्रह्मानन्द के अनुरोध पर माँ ने मठ भूमि का परिदर्शन किया था। चूँकि इन्हीं दिनों मठ के पुराने एक तल्ला मकान में श्रीमती ओली वुल, मैक्लाउड और भगिनी निवेदिता ठहरी हुई थीं, उन लोगों ने बड़े हर्ष के साथ श्रीमाँ की अभ्यर्थना की और नये भूखण्ड को दिखाया था।

नीलाम्बरबाबू के उद्यानभवन में ठाकुर के संन्यासी शिष्यों में जिनका अवस्थान अधिक हुआ, उनमें मुख्य थे – स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी निरंजनानन्द, स्वामी अद्वैतानन्द, स्वामी त्रिगुणातीतानन्द, स्वामी सुबोधानन्द और स्वामी विज्ञानानन्द। इस मठ में स्वामीजी से जिन युवाओं ने संन्यास दीक्षा पाई थी, उनके नाम हैं – १९ मार्च, १८९८ ई. को स्वामी स्वरूपानन्द, स्वामी सुरेश्वरानन्द, स्वामी कल्याणानन्द, स्वामी आत्मानन्द दोनों ने एकत्र संन्यास प्राप्त किया था तथा अन्य समय में स्वामी बोधानन्द और स्वामी सोमानन्द संन्यास-व्रत में दीक्षित हुए थे। स्वामीजी की इच्छा थी कि मठ में नैष्ठिक ब्रह्मचारी एवं संन्यासी; दोनों प्रकार के साधकों का स्थान होगा। इस प्रसंग में मार्गरेट नोबेल के जीवन की उल्लेखनीय घटना है – २५ जुलाई, १८९८ ई. को स्वामीजी ने उन्हें ब्रह्मचर्य-व्रत में दीक्षित किया था, उनका नाम 'निवेदिता' रखा गया था। एक वर्ष पश्चात् २५ जुलाई, १८९९ ई. बेलूड़ मठ के पुराने ठाकुर-मंदिर में स्वामीजी ने निवेदिता को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य प्रदान किया था।

गंगातट पर विशुद्ध वातावरण में नीलाम्बरबाबू के उद्यानभवन में मठवासियों के स्वास्थ्य के विषय में महत्त्व पहले से अधिक दिया जाने लगा था। मच्छरों का उत्पात एवं मलेरिया का भय लगा रहता था। कलकत्ता से चिकित्सक मतिलाल और होम्योपैथी डॉक्टर मजुमदार अपनी सेवा प्रदान करते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर काशीपुर के डाक्टर एम.एन. मुखर्जी को बुलाया जाता था। आलमबाजार मठ की भाँति यहाँ भी दिनचर्या का पालन सभी को करना अनिवार्य था। यथा सूर्योदय से पहले शय्या-त्याग, प्रातः और सन्ध्या एक-एक घण्टा जप-ध्यान एवं सबेरे नाश्ता, दोपहर और रात्रि के भोजन के समय घण्टा बजने पर उपस्थित होना आदि। सबेरे जप-ध्यान के पश्चात् क्रम से एक जन द्वारा स्तव-पाठ, तत्पश्चात् 'डेल सार्ट' नामक व्यायाम, मध्याह्न विश्राम के उपरान्त स्वाध्याय आदि नवागतों के लिये आवश्यक था। मठ के आय-व्यय का हिसाब, भूमि विषयक कार्य स्वामी ब्रह्मानन्द करते थे। स्वामी अद्वैतानन्द पर नए भूखण्ड को ठीक करने तथा कृषि कार्य करने का दायित्व था। स्वामी विज्ञानानन्द (संन्यास ग्रहण के पहले से ही) बेलूड़ मठ के नए भूखण्ड में गृह-निर्माण कार्य करवाते थे। यहाँ ठाकुर की नित्यपूजा को स्वामीजी के निर्देशानुसार संक्षिप्त किया गया था एवं जन्मतिथि-पूजा केवल दिन में ही पूरा कर लेने की विधि का आरम्भ हुआ था। स्वामीजी ने ठाकुर के जन्मतिथि के दिन स्वरचित आरती 'खण्डन भवबन्धन जगवन्दन' का गायन यहाँ आरम्भ किया था; उन्होंने ही इसमें सुर दिया था तथा स्वयं पखावज बजाते हुए सभी को साथ लेकर गाते थे। उनका दिव्यकान्तिमय शरीर और आरती गाते समय भावविभोर होना, यह दृश्य उस समय उपस्थित सभी को दिव्यानन्द प्रदान करता था। इसी वर्ष स्वामीजी ने नवम्बर में 'ॐ ह्रीं ऋतं' स्तव की रचना की थी और इसे भी सन्ध्या-आरती के समय गाना आरम्भ किया गया था। वराहनगर मठ में सन्ध्या-आरती के समय नृत्य किया जाता था, परन्तु आलमबाजार मठ में वह

नीलाम्बर बाबू का उद्यान भवन

बन्द हो गया था। अब नीलाम्बर बाबू के उद्यानभवन में पुन: नृत्य प्रवर्तित हुआ था। स्वामीजी ने स्वामी रामकृष्णानन्द को पत्र लिखकर बताया था कि आरती के समय हरि (स्वामी तुरीयानन्द), सारदा (स्वामी त्रिगुणातीतानन्द) और वे स्वयं (waltz) नृत्य इस प्रकार करते थे कि यदि स्वामी रामकृष्णानन्द देखते, तो वे भी आनन्द से भरपूर हो जाते। चूँकि स्वामी ब्रह्मानन्द नये भूखण्ड पर मठ के विभिन्न कार्यों में व्यस्त रहते थे, अत: स्वामी सारदानन्द नीलाम्बर बाबू – उद्यानभवन में दैनन्दिन जीवन को सुचारु रूप से चलाने का दायित्व वहन करते थे। समय-समय पर वे मठवासियों को मिलजुल कर एक-दूसरे की सहायता करते हुए सभी कार्य समय पर पूरा करने के बारे में उपयुक्त विचार भी व्यक्त करते थे। स्वामी विवेकानन्द युवा वर्ग को योग्य बनाने पर अधिक बल देते थे, तदनुसार युवा संन्यासी-ब्रह्मचारियों की एक समिति गठित की गई थी जिसका नाम रखा गया था 'Brothers' Union'। प्रत्येक माह एक संन्यासी या ब्रह्मचारी सभापति नियुक्त होता था। महीने के अन्त में आगामी महीने के लिये अगली समिति के गठन और कार्यसूची पर चर्चा होती थी। संघजीवन में व्यक्तिगत स्वाधीनता और आज्ञापालन के विषय में स्वामी प्रकाशानन्द द्वारा पूछे जाने पर स्वामी शिवानन्द ने १७ मार्च, १८९८ ई. को कहा था कि पूर्ण स्वाधीनता पूर्ण आज्ञापालन में ही निहित है। वासनाओं से मुक्ति आज्ञापालन से ही प्राप्त होती है। १ अगस्त, १८९८ ई. को स्वामीजी ने स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखा था – 'चाहे हजार गुणा तात्त्विक ज्ञान क्यों न रहे, प्रत्यक्ष रूप से किये बिना कोई कार्य सीखा नहीं जाता। ... एक की मृत्यु हो जाने से अन्य कोई व्यक्ति, दूसरा एक ही क्यों, आवश्यकता पड़ने पर दस व्यक्ति कार्य करने को प्रस्तुत रहें। ... एक के बाद एक प्रत्येक व्यक्ति को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य देना, परन्तु हमेशा एक कड़ी दृष्टि रखना, जिससे आवश्यकता पड़ने पर तुम नियन्त्रण कर सको।... हमारे भारत का यह एक महान दोष है, हम कोई स्थायी संस्था नहीं बना सकते हैं और उसका कारण यह है कि दूसरों के साथ हम कभी अपने उत्तरदायित्व का बँटवारा नहीं करना चाहते और हमारे बाद क्या होगा, यह भी नहीं सोचते।'' स्वामीजी की अनुपस्थिति में स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी सारदानन्द और स्वामी निर्मलानन्द शास्त्रचर्चा की परम्परा को बनाये रखते थे। सन्ध्या जप-ध्यान के पश्चात् प्रश्नोत्तर काल रखा जाता था, जिसमें एक संन्यासी को वक्ता का आसन ग्रहण कर किसी एक विषय पर अपना वक्तव्य रखना होता था एवं अन्य संन्यासी व ब्रह्मचारियों के प्रश्न का उत्तर देना होता था। इसके अतिरिक्त विशेषज्ञ या चिकित्सक शरीर की संरचना, पाचनतंत्र, स्नायुतंत्र, मानसिक रोग की चिकित्सा आदि विषयों पर भी मठवासियों का ज्ञानवर्धन करते थे। कालान्तर में विद्वान वयस्क तथा अल्पज्ञ दो अलग-अलग भाग में बैठकर विद्या-चर्चा करते थे।

२२ फरवरी, १८९८ ई. मंगलवार श्रीरामकृष्ण देव की जन्मतिथि के अवसर पर उत्सव का आयोजन नीलाम्बर मुखर्जी के उद्यानभवन में ही किया गया था। स्वामीजी की उपस्थिति से उत्सव गौरवान्वित हो रहा था। मठ में संन्यासी-ब्रह्मचारीगण भी अधिक संख्या में उपस्थित थे। स्वामी अखण्डानन्द भी इस उपलक्ष्य में उपस्थित थे। तीन दिन पूर्व शिवरात्रि की चार-प्रहर की पूजा विधिवत् सम्पन्न की गई थी। शिवरात्रि के दिन सायंकाल स्वामीजी के सभापतित्व में एक घरेलू सभा का आयोजन किया गया था। संन्यासी-ब्रह्मचारीगण द्वारा पाँच वयस्क संन्यासियों के प्रति अभिनन्दन-पत्र पढ़ा गया था। तत्पश्चात् स्वामीजी के निर्देशानुसार उन पाँचों वयस्क संन्यासियों ने अपने उत्तर दिये। उन्होंने सभापति के रूप में संघ की भावी कार्यधारा व्यक्तिगत रूप से तथा संघबद्ध होकर कैसे उद्देश्य की प्राप्ति करना है, इस विषय पर प्रेरणाप्रद व्याख्यान दिया था। ठाकुर की तिथिपूजा के दिन लगभग डेढ़ सौ साधु और गृहस्थ-भक्तों के आनन्दमय मनोभाव ने वातावरण को मनोरम बना दिया था। मठ के संन्यासियों ने स्वामीजी को मस्तक पर जटा, कानों में कुण्डल, दोनों बाहु में रुद्राक्षवलय और गले में रुद्राक्ष की माला, शरीर पर विभूतिधारण कराकर ऐसा सजाया था, मानो साक्षात् शिव शोभायमान हो रहे थे। स्वामीजी के आदेशानुसार इस दिन चालीस-पचास अब्राह्मण लोगों का उपनयन संस्कार किया गया था। इनमें भक्त गिरीशचन्द्र घोष और वचनामृत के लेखक 'श्रीम' भी थे। स्वामीजी ने पद्मासन में बैठकर 'कुजन्तं रामरामेति' स्तव पाठ किया तत्पश्चात् 'राम राम श्रीराम राम' पुन:-पुन: उच्चारण करते रहे। आधा घण्टा इस प्रकार गाने के बाद वे भाव विभोर होकर 'सीतापति रामचन्द्र रघुपति रघुराई' गाते रहे। स्वामी सारदानन्द ने गाया – 'एकरूप-अरूप-नाम-वरण'। ठाकुर जो भजन गाया करते थे, उनमें से भी कुछ भजन गाये

गये। स्वामीजी का मनोभाव कुछ बदला और उन्होंने अपनी वेशभूषा खोलकर गिरीशघोष को प्रेमपूर्वक पहना दिया। स्वामीजी बोले, 'परमहंसदेव कहते थे कि ये भैरव के अवतार हैं। हमारे साथ इनका कोई भेद नहीं है।' गिरीशबाबू भावुक होकर ठाकुर के बारे में बोलते-बोलते भावावेग से शान्त हो बैठे रहे। स्वामीजी ने कुछ हिन्दी भजन भी गाये थे, 'प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो' इत्यादि। इसी बीच स्वामी अखण्डानन्द मुर्शिदाबाद से लाये हुए दो बड़े-बड़े रसगुल्ले लेकर उपस्थित हुए। स्वामीजी ने अखण्डानन्द द्वारा की जा रही सेवाकार्य की भूयसी प्रशंसा की और कर्मयोग का माहात्म्य वर्णन किया। तत्पश्चात् स्वामीजी ने दो गीत गाये। गिरीशघोष रचित ठाकुर का गान 'दु:खिनी ब्राह्मणी की गोद में कौन सोया है प्रकाश फैलाये हुए' तथा कमलाकान्त का लिखा श्यामा-संगीत 'मजलो आमार मन भ्रमरा' इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण-जन्मतिथि के अवसर पर उपरोक्त कार्यक्रम के पश्चात् रविवार २७ फरवरी, १८९८ ई. को 'सार्वजनिक महोत्सव' का आयोजन किया गया था। अधिवक्ताओं के परामर्शानुसार एवं नवीन मठ की भूमि समतल न होने के कारण यह उत्सव निकट के मुहल्ले बालि में श्रीपूर्णचन्द्र दा के गृह-प्रांगण में आयोजित किया गया था। स्वामी योगानन्द और स्वामी त्रिगुणातीतानन्द के अथक परिश्रम से यह उत्सव सफल हुआ था। १६ मार्च, १८९८ ई. को ब्रह्मवादिन् पत्रिका में प्रकाशित इस महोत्सव के प्रत्यक्षदर्शी मार्गरेट एलिजाबेथ नोबेल (भगिनी निवेदिता) के लेख का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है – ''स्वच्छ आकाश में झिलमिलाती सूर्य की किरणें, निकट के किसी मन्दिर से लगातार घण्टे की ध्वनि, वातावरण जाफरान पुष्पों की सुगन्ध से परिपूर्ण था। महोत्सव-स्थल पर इतनी भीड़ थी कि हमलोग बड़ी कठिनाई से उद्यानवाटी तक पहुँच सके थे। सैकड़ों युवा स्वामी विवेकानन्द को देखने के आग्रही थे और जैसे ही स्वामीजी दिखे, वे लोग ऊँचे स्वर से बोलने लगे 'वक्तृता! वक्तृता !' उद्यान के एक दूसरे भाग में संन्यासीगण खिचड़ी प्रसाद का वितरण कर रहे थे। दिनभर लगभग बीस हजार लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया। इस बृहत् महोत्सव में लोगों का शान्त एवं अनुशासनबद्ध चाल-चलन देखने पर आश्चर्य होता था। उत्सव में सबसे आकर्षण के योग्य था अस्थायी रूप से तैयार किया गया मन्दिर, जिसके मंच पर श्रीरामकृष्ण का चित्र शोभायमान हो रहा था। गेंदा, जूही तथा गुलाब के पुष्पों से यह मन्दिर और आसपास के स्थान को सजाया गया था। सभी प्रकार के सामाजिक बन्धनों की उपेक्षा कर लोग परस्पर मिल रहे थे। जैसे गोपाल की माँ का स्वाभाविक भक्ति-भाव था, वैसा ही भक्ति-भाव लोगों को यहाँ खींच लाया था। इस भक्ति की आभा में ही सभी आपस में एकत्व का अनुभव कर रहे थे।'' स्वामीजी ने इस महोत्सव का उल्लेख करते हुए स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखा था कि इस वर्ष के महोत्सव से मैं सन्तुष्ट नहीं हुआ।... प्रत्येक उत्सव में यहाँ के सभी प्रकार के चिन्तन का एक अपूर्व समावेश होना चाहिये। आगामी वर्ष इस विषय पर चेष्टा करुँगा और मैं व्यवस्था कर दूँगा। इस महोत्सव के दिन ही रामकृष्ण संघ के इतिहास में एक अति महत्त्वपूर्ण घटना को स्मरण करना समीचीन होगा। प्राप्त तथ्यों के आधार पर (जैसाकि – रामकृष्ण मठेर आदिकथा – में लिखा गया है) २७ फरवरी, १८९८ ई. को (वर्णन-स्वामीजी और शिष्य श्रीशरतचन्द्र चक्रवर्ती के बीच वार्तालाप से) प्रात:काल स्वामीजी ने स्नान कर पूजाघर में प्रवेश किया। आसन ग्रहण कर फूल और बिल्वपत्र दोनों हाथों से उठाकर श्रीरामकृष्ण की पादुकाओं पर अर्पित कर ध्यानस्थ हो गये। उनकी स्निग्धोज्ज्वल कान्ति से मानो पूजागृह अद्‌भुत ज्योति से पूर्ण हो गया। पूजा समाप्त होने के बाद स्वामीजी ताँबे की मंजूषा जिसमें श्रीरामकृष्ण की भस्मास्थि रक्षित थी, उसे स्वयं अपने कंधे पर रखकर चलने लगे, शंख व घण्टों की ध्वनि चारों ओर गूँज उठी। चलते-चलते स्वामीजी ने शिष्य शरतचन्द्र चक्रवर्ती से कहा, 'श्रीगुरुदेव ने मुझसे कहा था, तू मुझे कन्धे पर चढ़ाकर जहाँ ले जायेगा, वहीं जाऊँगा और रहूँगा, चाहे वह स्थान वृक्ष के तले हो या कुटी में। इसीलिए मैं स्वयं उनको कन्धे पर उठाकर नयी मठ-भूमि पर ले जा रहा हूँ। निश्चय जान लेना कि श्रीगुरुदेव 'बहुजनहिताय' यहाँ दीर्घ काल तक स्थिर रहेंगे। (ठाकुर ने यह बात स्वामीजी से काशीपुर उद्यानवाटी में कही थी।)'' वार्तालाप करते हुए सभी नई मठ-भूमि पर पहुँचे। स्वामीजी ने कन्धे पर से मंजूषा को भूमि पर बिछे आसन पर उतारा और भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। अन्य सबने भी प्रणाम किया। इसके बाद स्वामीजी ने पूजा की एवं यज्ञाग्नि प्रज्वलित कर हवन किया। अन्त में ठाकुर को खीर भोग निवेदन किया। उपस्थित संन्यासी तथा भक्तों को आदरपूर्वक बुलाकर बोले, आज तुम लोग तन-मन-वाणी द्वारा श्रीगुरुदेव से ऐसी प्रार्थना करो, जिससे

महा युगावतार श्रीरामकृष्ण 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' इस पुण्यक्षेत्र में अधिष्ठित रहें और सब धर्मों का अपूर्व समन्वय-केन्द्र बनाये रखें। सभी ने उनके आदेश का पालन किया। पूजा समाप्त होने पर स्वामीजी ने शिष्य से कहा, ''श्रीगुरुदेव की इस मंजूषा को लौटा ले जाने का अधिकार हम लोगों (संन्यासियों) में से किसी को नहीं है, क्योंकि हमने ही यहाँ श्रीगुरुदेव की स्थापना की है। अतएव तू इस मंजूषा को अपने मस्तक पर रखकर मठ (नीलाम्बर बाबू की वाटिका) को ले चल। आरम्भ में शिष्य के संकोच करने पर स्वामीजी ने ढाँढस बँधाया। मंजूषा लाकर उद्यानभवन में रखा गया। अब स्वामीजी कहने लगे। श्रीगुरुदेव की इच्छा से आज उनके धर्मक्षेत्र की प्रतिष्ठा हो गई। बारह वर्ष की चिन्ता का बोझ आज सिर से उतर गया।... यह मठ विद्या एवं साधना का केन्द्र-स्थान होगा। तुम्हारे समान सब धार्मिक गृहस्थ इस भूमि के चारों ओर अपने घर-द्वार बनाकर बसेंगे और बीच में त्यागी संन्यासी लोग रहेंगे। समय आने पर यह सब होकर रहेगा।

मठ जीवन के क्रम-विकास के साथ-साथ संन्यासी-ब्रह्मचारियों के आध्यात्मिक जीवन और संघ-जीवन को सुचारु रूप से अग्रसर होने के लिए नियमों को और भी अधिक स्पष्ट नीलाम्बर बाबू के उद्यानभवन में किया गया था। यहाँ दिनचर्या को निर्दिष्ट समय पर समाप्त करने तथा नवीन मठ के निर्माण कार्य में अधिक श्रम नियोजित करने में मठ के सभी सदस्य अपने आप को ढाल रहे थे। मठ जब आलमबाजार में था, उस समय इस प्रसंग में स्वामीजी ने स्वामी शिवानन्द को पत्र में लिखा था – Above all, "obedience" and "esprit de corps" – अर्थात्, आज्ञापालन और संघ-भावना, अन्यथा सफल नहीं हुआ जा सकता। संघबद्ध जीवन की आधारशिला थी परमाराध्य श्रीरामकृष्णदेव के प्रति सम्पूर्ण समर्पण और सदस्यों में भ्रातृत्व-बोध। ठाकुर के अन्तरंग त्यागी शिष्यों में काशीपुर से ही इन गुणों का विकास परवर्ती दस वर्षों में रामकृष्ण संघ को एक दृढ़ नींव पर खड़े भवन का आकार देने में समर्थ हुआ था। इस भवन की प्रत्येक शिला को मठ के सदस्यों ने त्याग एवं तपस्या से शक्तिशाली बनाया था। स्वामी विवेकानन्द ने ९ जुलाई, १८९७ ई. को पत्र में लिखा था, 'उनका जीवन चार-पाँच वर्ष से अधिक न होगा, इसलिये वे देखना चाहते हैं कि उनके द्वारा तैयार किये गये यन्त्र ने कार्य करना आरम्भ कर दिया है। हम यह जान लें कि मानव जाति के कल्याण हेतु वे एक ऐसा यन्त्र चलाकर गये हैं, जिसे कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती। तब वे भविष्य की चिन्ता छोड़कर सो सकेंगे।' अवश्य ही स्वामीजी ने नीलाम्बर मुखर्जी के उद्यानभवन में अपने स्वप्न को साकार होते देख लिया था, ऐसा हमारा विश्वास है।

रामकृष्ण मठ का प्रधान केन्द्र – बेलूड़ में स्थाई मठ के बारे में श्रीमाँ ने कहा था – ''ठाकुर की इच्छा से उस भूमि की व्यवस्था हुई। उन्हीं ने मठ के लिये उस स्थान का निर्वाचन किया था।'' परवर्ती काल में मठ के माहात्म्य के बारे में श्रीमाँ ने कहा था, ''जिनके लिये काशी जाते हैं, वे दक्षिणेश्वर और बेलूड़ में हैं।'' जब मठ वराहनगर में था उस समय एक दिन स्वामीजी ने वराहनगर के गंगातट के घाट पर खड़े होकर अपने गुरुभाइयों से कहा था – "Something tells me that our permanent Math will be in the neighbourhood across the river." (The Life of Swami Vivekananda by his Eastern & Western disciples, pg. 213-14) – (मानो कोई मुझसे कहता है कि हमारा स्थायी मठ नदी के उस पार होगा।) बेलूड़ में काठगोला घाट के निकट नेपाल के राजा का लकड़ी का गोदाम था। ठाकुर के प्रिय भक्त विश्वनाथ उपाध्याय जो कि नेपाल के राजा के प्रतिनिधि थे, एक बार ठाकुर को यहाँ लेकर आये थे। ठाकुर ने प्रसन्न होकर मिठाई ग्रहण की थी। ४ मार्च, १८९८ ई. मठ के लिये भूमि क्रय की गई थी, इसके लगभग एक वर्ष पूर्व स्वामीजी ने श्रीमाँ से कहा था, ''माँ ! अभी-अभी १०८ बिल्वपत्रों की आहुति ठाकुर को दिया, जिससे मठ की अपनी भूमि हो सके। वह कर्म कभी भी विफल नहीं होगा, वह होकर ही रहेगा।'' अन्तत: उपरोक्त घटनाओं के क्रम से मठ की स्थाई भूमि का क्रय हो

गया। अस्तु, इस भूखण्ड पर एक छोटा और एक कुछ बड़ा मकान था। स्वामीजी मठ के निर्माण-कार्य एवं आनुषंगिक कार्यों पर यथासाध्य समय और मनोनिवेश कर रहे थे। स्वामी विज्ञानानन्द उस समय ब्रह्मचारी थे, वे भवन-निर्माण-कार्य और स्वामी अद्वैतानन्द साग-सब्जी उगाने में लग गये थे। स्वामीजी की अनुमति लेकर श्रीमती वुल, सुश्री मैकलाउड और भगिनी निवेदिता ने एकतल्ला वाले बड़े घर में निवास करना आरम्भ कर दिया था। इस भवन के आसपास विभिन्न तरह के वृक्ष और पक्षियों का कलरव, सम्मुख पवित्र गंगा इन तीनों विदेशी आगन्तुकों के लिये बड़ा ही मनोहर था। एक आम के वृक्ष के नीचे बैठकर स्वामीजी तीनों शिष्याओं को भारतीय संस्कृति और परम्पराओं का परिचय देते थे। आँधी और बाढ़ से समय समय पर क्षति होने पर भी क्रमश: साधु निवास (स्वामीजी के शयनकक्ष वाला अंश), दूसरे तल्ले के कमरे, नये भवन के ऊपरवाले तल्ले पर ठाकुर-पूजा-कक्ष, पूजा का भंडार-कक्ष, नीचे रसोईघर, भोजन-कक्ष आदि तैयार हो गये। मठ के संन्यासियों के आह्वान पर श्रीमाँ १२ नवम्बर, १८९८ ई. को स्वयं के द्वारा नित्य पूजित ठाकुर का चित्र साधु निवास में लायीं और नीलाम्बर भवन से ठाकुर की भस्मास्थि ('श्रीजी') को भी लाया गया। माँ ने ही साधुनिवास में ठाकुर पूजा की। इसी प्रसंग में ९ दिसम्बर, १८९८ ई. की महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख आवश्यक है। स्वामीजी ने एक दिन पहले ही आकर मठ में रात्रिवास किया था। ९ दिसम्बर, १८९८ ई. को सवेरे स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी सदानन्द और स्वामी विरजानन्द भी आ पहुँचे थे। इस अनुष्ठान के बारे में मठ डायरी में लिखित है – 'Thakur was taken to the new Math and the new Math was consecrated.' अत: तदनुसार घटनाक्रम अनुमानत: इस प्रकार हुई होगी – पूजागृह में ठाकुर की भस्मास्थि की मंजूषा (आत्माराम का कोटा) को लाकर विधिवत् षोडषोपचार पूजा व हवन किया गया था। नये भवन के रसोईघर में अन्नभोग पकाकर ठाकुर को निवेदन किया गया था। इस प्रकार नये मठ की आनुष्ठानिक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी। स्वामी शिवानन्द महाराज ने कहा है – 'यह स्थान तो वैकुण्ठ है।... यहाँ हमलोगों के 'आत्माराम हैं और ठाकुर के सभी पार्षद इस स्थान में अभी भी सूक्ष्म देह में हैं, वे दिखाई भी देते हैं।... यह तो महातीर्थ है। इस स्थान के प्रत्येक धूल के कण भी पवित्र हैं।... ठाकुर इस बार जगत के समस्त धर्ममतों के जीवित आदर्श के रूप में आये हैं। इसीलिये उनके द्वारा विभिन्न मतों की साधना तथा सिद्धि प्राप्त की गयी। ठाकुर का जीवन ही प्रत्येक धर्मादर्श का मूर्तविग्रह है। अब देखोगे उनके अलौकिक जीवन से प्रत्येक धर्मावलम्बी नया आलोक, नई आशा और प्रेरणा पायेंगे एवं उनके जीवनादर्श के अनुरूप अपना जीवन गठन करेंगे।

स्वामीजी का आम-वृक्ष

'श्रीजी' आत्माराम का कोटा

मठ नई भूमि पर प्रतिष्ठित होते ही बाली नगरपालिका ने प्रति माह दो सौ सात रुपये कर देने का आदेश दिया। उन दिनों मठ के लिए कर के रूप में यह राशि देना सम्भव नहीं था। स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी सारदानन्द ने समझाने का प्रयास किया कि यह एक जनसाधारण हेतु पूजा-स्थल है, परन्तु नगरपालिका के अधिकारी न माने। निरुपाय होकर मठ की ओर से न्यायालय में इसके विरुद्ध में आवेदन किया गया। नीचले न्यायालय से उच्च न्यायालय तक इस पर विचार किया गया। अंग्रेज अधिकारी मठ परिसर देखने आये। अन्ततोगत्वा २३ फरवरी, १९०१ ई. को कलकत्ता के उच्च न्यायालय ने मठ के पक्ष में अपनी राय दी और इस प्रकार मठ उस समय से करमुक्त है। **(क्रमश:)**

साधुओं के पावन प्रसंग (५७)

स्वामी प्रभवानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

चतुर्थ पर्व

१९५९ ई. में मैंने स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज (१८९३-१९७६) का कोलकाता अद्वैत आश्रम में प्रथम दर्शन किया था। आश्रम तब वेलिंगटन स्क्वायर में था। वे पाँच संन्यासिनियों प्रव्राजिका सारदाप्राणा, प्रभाप्राणा, योगप्राणा, वरदाप्राणा और सत्यप्राणा को लेकर आये थे। हमने उनलोगों को जलपान करवाया था। तत्पश्चात् उसी वर्ष दुर्गापूजा के बाद जब मैं कनखल में था, तब वहाँ पर भी महाराज के साथ भेंट हुई। १९६३ ई. में स्वामीजी की जन्मशतवार्षिकी के उपलक्ष्य में पार्क सर्कस में विराट उत्सव हुआ था। उसमें वे व्याख्यान देने आये थे। मैंने वह व्याख्यान सुना था।

०८/०१/१९६४, बेलूड़ मठ

उस दिन साधु-ब्रह्मचारियों का सम्मेलन हुआ। स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज सभापति थे। स्वामी प्रभवानन्द, निखिलानन्द, रंगनाथानन्द, पुण्यानन्द, हिरण्मयानन्द, लोकेश्वरानन्द, सम्बुद्धानन्द, सिद्धात्मानन्द जी महाराज आदि वक्ता थे। इन सब वरिष्ठ संन्यासियों ने अपनी-अपनी स्मृतियाँ बतायीं। उस समय टेप रिकोर्डर नहीं था। मैंने अपनी दैनन्दिनी में कुछ-कुछ लिख कर रखा था।

स्वामी प्रभवानन्द जी ने कहा, ''मैं उस समय मद्रास में था। राजा महाराज वहाँ पर थे। त्रिवेन्द्रम के राजा की दो पुत्रियों को ठाकुर का दर्शन हुआ था। वे लोग जब महाराज का दर्शन करने आयीं, तब महाराज ने उनको दीक्षा दी।''

१९२३ ई. में अमेरिका जाने के पूर्व वे उद्बोधन में शरत महाराज को प्रणाम करने के लिए गये। शरत महाराज ने कहा, ''अच्छा, तुम तो सात समुद्र तेरह नदी पार जा रहे हो।'' महाराज को थोड़ा-सा चिन्तित देखकर शरत महाराज ने कहा, ''You are going to do the Thakur's work. Don't be anxious. Everything else is our business; you have nothing to do with it." अर्थात् तुम ठाकुर का कार्य करने के लिए जा रहे हो। चिन्ता मत करो। सभी कुछ हमारा कार्य है, तुमको उससे कुछ भी लेना-देना नहीं है।

एक अन्य समय प्रभवानन्दजी महाराज ने मुझसे कहा था, अमेरिका जाने के पूर्व वे श्रीम का दर्शन करने गये थे। श्रीम कभी भी साधुओं को पैर छूकर प्रणाम करने नहीं देते थे। वे गृहस्थ थे और संन्यासाश्रम को बहुत सम्मान देते थे। जो भी हो, प्रभवानन्दजी ने श्रीम से प्रेम से कहा, ''आप आँखें बन्द करके ठाकुर से मेरे लिए थोड़ी-सी प्रार्थना कीजिए।'' श्रीम उसी समय आँखें मुँदकर ध्यान-प्रार्थना करने लगे। उसी सुयोग का लाभ उठाकर प्रभवानन्दजी ने उनका चरण छूकर प्रणाम किया।

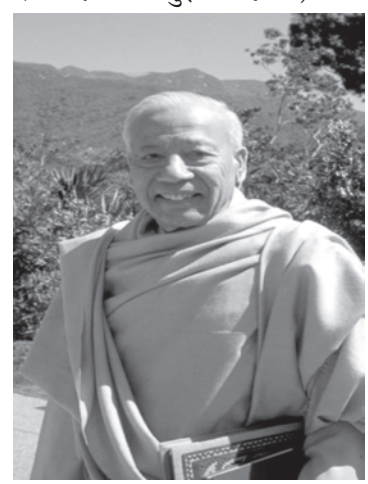
स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज

१९६३ ई. में बेलूड़ मठ में साधु-सम्मेलन में स्वामी प्रभवानन्द जी ने कहा कि उनको महापुरुष महाराज ने कहा था, ''पाश्चात्यवासी यदि तुमसे पूछे Have you seen God? Tell them you have seen the Son of God-you have seen God." अर्थात् क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है? उनको कहना तुमने ईश्वर के पुत्र को देखा है, तो ईश्वर को देखा है।

उस व्याख्यान में उन्होंने अब्राह्मन लिंकन की घटना बतायी थी, ''लिंकन एक बार कहीं घोड़ागाड़ी से जा रहे

थे। अकस्मात् देखा कि रास्ते पर गोखर का एक कीड़ा चित्त होकर पड़ा छटपटा रहा है। थोड़ा-सा भी आगे नहीं जा पा रहा है। उन्होंने गाड़ी से नीचे उतरकर कीड़ा को सीधा कर दिया, जिससे वह चल सके। उन्होंने कहा था, 'मेरा जीवन धन्य होगा, यदि इस जीवन में एक भी मनुष्य की, यहाँ तक कि एक कीड़ा की भी सहायता कर पाऊँ।' ''

१९६३ ई. से हॉलीवुड केन्द्र के स्वामी विद्यात्मानन्द के साथ मेरी घनिष्ठता हुई। उनका उस वर्ष संन्यास हुआ था और 'The photographs of Ramakrishna' के ऊपर वे अनुसन्धान कर रहे थे। मैंने उस कार्य में बंगला से अंग्रेजी में अनुवाद करके उनकी सहायता की थी। वह लेख 'Vedanta and the West' पत्रिका में १७२वें अंक में प्रकाशित हुआ। प्रभवानन्दजी द्वारा सम्पादित उस पत्रिका का मैं एक अनुरागी पाठक हो गया। महाराज ने उनकी गीता मुझे हॉलीवुड से ऑटोग्रॉफ के साथ भेजा था। तदुपरान्त बेलूड़ मठ के न्यासियों द्वारा मुझे हॉलीवुड स्वामी प्रभवानन्द जी के सहयोगी के रूप में भेजा गया। ११ जून, १९७१ ई. से ४ जुलाई, १९७६ तक महाराज के बहुत निकट रहा हूँ। वे मुझे पुत्रवत् स्नेह करते थे। पाँच वर्ष तक उनसे ठाकुर और श्रीमाँ के सन्तानों की कितनी बातें सुनी हैं, उनमें से कुछ-कुछ यहाँ पर लिख रहा हूँ। अनेक संन्यासियों को देखा हूँ, जिनका शान्त स्वभाव होता है, जो अधिक बातें नहीं करते हैं। किन्तु प्रभवानन्दजी खुले दिल के थे। वक्तृता, कक्षा, भोजन टेबल पर अपनी जीवन गाथा और पुराने दिनों की बातें बताया करते थे। महाराज के सचिव प्रव्राजिका आनन्दप्राणा ने उन सब बातों का संग्रह करके एक अपूर्व पुस्तिका की रचना की है। जो प्रकाशित नहीं हुआ, केवल व्यक्तिगत प्रसार के लिए कुछ प्रति तैयार की गई थी। (वर्तमान में A light to the West नाम से हॉलिवुड वेदान्त केन्द्र से प्रकाशित हुई है।) पुस्तिका में जो-जो बातें हैं, वे प्राय: सभी बातें मैंने महाराज के मुँह से सुनी है तथा कुछ-कुछ दैनन्दिनी में लिखकर रखा था। आनन्दप्राणा का note और मेरी दैनन्दिनी; दोनों को मिलाकर वह स्मृतिकथा लिपिबद्ध हुई थी।

स्वामी प्रभवानन्द का पूर्व नाम अवनी घोष था, जन्मस्थान विष्णुपुर, जन्म १८९३ ई.। १९०७ ई. में उन्होंने विष्णुपुर में श्रीमाँ का दर्शन किया था। उनकी स्मृति में : ''एक सन्ध्या मैं मेरे मित्र के साथ घूमने गया था। एक सरायखाना के बरामदे में देखा, एक गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी और कई महिलायें थीं। कौतूहलवश मैंने संन्यासी को प्रणाम किया। उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या तुम श्रीमाँ का दर्शन करना चाहते हो?' इसके पूर्व मैंने श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पढ़ा था। मैंने पूछा, 'क्या ये श्रीरामकृष्ण परमहंस की पत्नी हैं?' श्रीमाँ कुछ दूर पर बैठी हुई थीं। संन्यासी ने मेरी बात पर हँसकर कहा, 'वे वहाँ श्रीमाँ बैठी हुई हैं। तुम प्रणाम करो।' मैंने श्रीमाँ का चरण-स्पर्श करके प्रणाम किया। उन्होंने मेरी ठुड्डी को चुमकर अपने मुँह से लगाया। तत्पश्चात् श्रीमाँ ने मुझसे पूछा, 'बच्चा, मैंने क्या तुमको पहले देखा है?' मैंने कहा, 'नहीं माँ' 'लगता है कि आपने मेरे बड़े भाई को देखा होगा।' ''

श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्यों में से स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज का ही उन्होंने प्रथम दर्शन विष्णुपुर में किया था। वे खोका महाराज को गृहशिक्षक के पास ले गये थे। वे बहुत भक्त थे। खोका महाराज उनके पास ही थे।

स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज

प्रभवानन्दजी के बड़े भाई (अमूल्य) बोसी सेन के सहपाठी थे। बोसी सेन स्वामीजी के प्रथम शिष्य स्वामी सदानन्द के बहुत घनिष्ठ भक्त थे। सदानन्द

बोसी सेन के घर में आकर कभी-कभी रहते थे। सेन परिवार के साथ प्रभवानन्दजी के परिवार के साथ सम्पर्क था।

प्रभवानन्दजी स्मृति बताते हुए कहते हैं : ''उस समय मेरी उम्र १४ वर्ष की थी। विद्यालय के पश्चात् मैं सदानन्दजी को देखने जाया करता था। एक दिन उन्होंने मुझसे पुछा, 'तुम constructive (रचनात्मक) शब्द का अर्थ जानते हो?' 'हाँ, जानता हूँ।' 'नहीं, तुम शब्दकोश देखकर उसका अर्थ अच्छी तरह से जान लो।' तत्पश्चात् पुन: कहा, 'उसी प्रकार destructive (विनाशत्मक) शब्द का भी अर्थ अच्छी तरह से जान लो।' तदुपरान्त उन्होंने कहा, 'अब तुम इन दो शब्दों का अर्थ अच्छी तरह से समझ गये। तदनन्तर उन्होंने तीन बार कहा, 'Be constructive, Be constructive, Be constructive.' स्वामी सदानन्द जी का मेरे जीवन पर असीमित प्रभाव है। वे घण्टा पर घण्टा मेरे साथ बातें करते थे।

''सदानन्द जी बहुत अस्वस्थ थे। मधुमेह और बेरी-बेरी से कष्ट पा रहे थे। बोसी और उनके भाई टाबू ने प्राणपण से उनकी सेवा की थी। एक दिन किसी कारण से रुष्ट होकर सदानन्द ने कहा, 'तुमलोग सोचते हो कि तुमलोगों के बिना मैं नहीं रह पाऊँगा। मुझे तुमलोग रास्ते में फेंक दो, देखना स्वामीजी आकर मुझे पकड़कर ले जायेंगे और गोदी में बैठा लेंगे।' ''

स्वामी सदानन्द

१९१० ई. में छात्रावस्था में प्रभवानन्दजी ने गिरीश घोष को देखा था और उनके अभिनय को भी देखा था। निवेदिता एक बार स्वामी सदानन्द को देखने आयी थीं। उस समय उन्होंने निवेदिता को भी देखा था।

प्रभवानन्दजी ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज का दर्शन १९११ ई. में बलराम मन्दिर में किया था। उस समय वे कोलकाता सिटी कॉलेज के छात्र थे। वे बेलूड़ मठ प्राय: ही जाया करते और वहाँ पर महाराज उनको अनेक आध्यात्मिक उपदेश देते थे। वे स्वदेशी आन्दोलन के साथ जुड़े हुए थे। कॉलेज हॉस्टल में तकिया के नीचे रिवाल्वर छुपाकर रखते थे। १९१२ ई. में दुर्गापूजा के समय वे कनखल गये। उस समय महाराज भी कनखल में ही थे। वहीं पर महाराज से उनकी दीक्षा हुई। १९१४ ई. में उन्होंने बी.ए. पास किया और छह महीना तक एम.ए. की पढ़ाई भी की थी। ब्रजेन्द्रनाथ शील के पास उस समय उन्होंने दर्शन का अध्ययन किया था। ग्रीष्मकाल और पूजा की छुट्टी के समय वे महाराज के पास रहते थे।

दीक्षा के उपरान्त प्रभवानन्दजी एक बार जयरामवाटी में श्रीमाँ का दर्शन करने गये। उनकी स्मृति में :

''मैं और मेरा एक मित्र जब वहाँ उपस्थित हुए, तब श्रीमाँ के सेवक ने बताया कि श्रीमाँ हमारे लिए प्रतीक्षा कर रही हैं तथा हमारे लिए रहने की व्यवस्था करने के लिए कहा है।

''हमलोग दोपहर भोजन के बाद गये थे, किन्तु श्रीमाँ ने हमारे लिए अलग से भोजन रख दिया था। शालपत्ता के ऊपर हमें भोजन दिया गया और श्रीमाँ हमारे पास बैठकर बातें करने लगीं। भोजन के बाद जब हमलोग पत्ता साफ करने गये, तो श्रीमाँ ने कहा, 'ओ, क्या कर रहे हो?' मेरा मित्र थोड़ा लज्जाशील था। मैंने कहा, 'माँ, हमलोग अपना जूठा पत्ता साफ कर रहे हैं।' श्रीमाँ ने कहा, 'बेटा, घर में यदि तुम्हारी माँ पास में बैठी रहे, तो क्या तुम पत्ता साफ करोगे?' बात उसी समय समाप्त हो गयी। उन्होंने ही पत्ता साफ किया।

''श्रीमाँ का वैशिष्ट्य था – जिन्होंने भी उनका दर्शन किया है, उन्होंने अनुभव किया है कि वे मेरी अपनी माँ हैं। हमें यह धारणा दूसरों से पूछने से मालूम हुई, उनलोगों की भी उसी प्रकार की धारणा हुई थी। पहले उनके आध्यात्मिक महत्त्व नहीं जानने के कारण मन में हुआ – गाँव की एक सहज, सरल, साधारण महिला – ठीक मेरी अपनी माँ जैसी। बाद में मैंने समझा कि जीवन के प्रारम्भ में पहले श्रीमाँ की कृपा प्राप्त हुई थी, इसीलिये बाद में महाराज की कृपा प्राप्त हुई।''

१९१४ ई. में प्रभवानन्द काशी में स्वामी प्रेमानन्द और स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज के घनिष्ठ सम्पर्क में आये थे। महाराज विभिन्न समय ठाकुर के पार्षदों के स्मृति बताते-बताते आत्मविभोर हो जाते थे। उनका चेहरा आनन्द से उल्लसित हो जाता था। **(क्रमश:)**

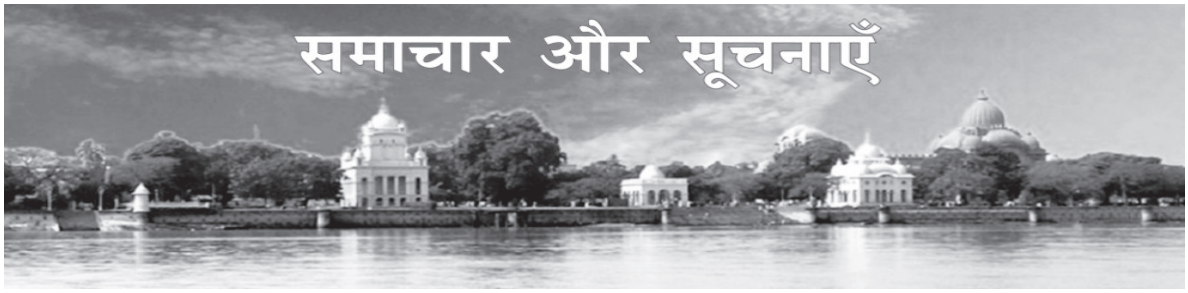

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा आदिवासी क्षेत्रों के १७ विद्यालयों में शिक्षा सामग्री वितरित की गई

१४ जुलाई, २०२३ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा 'विद्यार्थी शैक्षणिक सामग्री सहायता' के अन्तर्गत रायपुर से १६० किलोमीटर दूर आदिवासी क्षेत्रों के कुल १७ शासकीय विद्यालयों – प्राथमिक शाला, नवागढ़, प्राथमिक शाला, महेन्द्रगढ़, प्राथमिक शाला, सातधार, प्राथमिक शाला, कसाबाय, माध्यमिक शाला, कसाबाय, प्राथमिक शाला, पतोरादादर, प्राथमिक शाला, कारीडोंगरी, प्राथमिक शाला,

परियाबहरा, माध्यमिक शाला, परियाबहरा, प्राथमिक शाला, बेगरपल्ला, माध्यमिक शाला, बेगरपल्ला, प्राथमिक शाला, कुर्राबहार, प्राथमिक शाला, मर्दाकला, माध्यमिक शाला, मर्दाकला, प्राथमिक शाला, महाडुला, माध्यमिक शाला, महाडुला, प्राथमिक शाला, बागडबरा में विद्यार्थियों को ५०० स्कूल बैग, १००० नोटबुक, ५०० पेन, ५०० पेन्सिल, ५०० ईरेजर, ५०० सार्पनर, ५०० स्केल और ५०० 'विवेक ज्योति' पत्रिका का वितरण किया गया।

कोयम्बटूर मिशन : कोयम्बटूर जिले के ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में २८ मई से १८ जून के बीच ८ स्वास्थ्य शिविर (१ कैंसर, २ कार्डियोलॉजी, १ आर्थोपेडिक, १ नेत्र एवं ३ सामान्य) आयोजित किये गये, जिसमें कुल ५३५ रोगियों को चिकित्सा प्रदान की गयी।

गुराप : मार्च से जून के मध्य नेत्र शिविर में कुल १०१ रोगियों का निरीक्षण किया गया, जिनमें से २२ रोगियों की नेत्र-चिकित्सालय में शल्य चिकित्सा की गयी।

गुवाहटी : २२ से २५ जून के मध्य कामाख्या मन्दिर के समीप अम्बुवाची मेले में चिकित्सा शिविर आयोजित हुआ, जिसमें ६०४८ रोगियों की चिकित्सा की गयी।

पोरबन्दर : ९ जून को आयोजित नेत्र शिविर में ७८ रोगियों की चिकित्सा की गयी एवं तदुपरान्त ५२ रोगियों को कैटारेक्ट शल्य चिकित्सा प्रदान की गयी।

पुरीमठ : २० से २८ जून तक रथयात्रा के अवसर पर मुण्डीचा मन्दिर के समीप आयोजित चिकित्सा शिविर में ५९८ रोगियों का उपचार किया गया।

हलशुरु (बैंगलुरू) : मार्च, अप्रैल एवं मई माह में नेत्र-चिकित्सालय में १२२ कैटरेक्ट रोगियों की शल्य चिकित्सा की गयी।

कोइलैंडी : १४ एवं १६ जून को स्वास्थ्य जागरूकता शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें ६५ रोगियों की चिकित्सा की गयी।

मदुरै : २१ मई को नेत्र शिविर आयोजित हुआ जिसमें १६९ रोगियों का निरीक्षण किया गया, ६४ कैटारेक्ट शल्य चिकित्साएँ की गयी एवं १२ लोगों को चश्में प्रदान किये गये। ११ जून को स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम में ८८ लोग उपस्थित थे।

मनसाद्वीप : २५ जून को नेत्र चिकित्सालय का आयोजन किया गया, जिसमें १४० रोगियों की चिकित्सा की गयी। १ जून को एक अन्य संस्थान के सहयोग से ३८ रोगियों की कैटरेक्ट चिकित्सा की गयी।